TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182316

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 N235 P. G. Accession No. H150

Author नरोत्तमदास

Title सुदामाचरित · 1958 ·

This book should be returned on or before the date last marked below.

सुदामा-चरित

(टीका सहित)

[कविवर नरोत्तमदास के अत्यंत लोकप्रिय खंडकाव्य का
सुसंपादित संस्करण]

भूमिका लेखक
श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०, एल० टी०
श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०

संपादक
श्री बालबंधु, एम० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक
हिंदी-साहित्य-भंडार
गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ

१९५८
मूल्य बारह आना

मुद्रक
विद्यामंदिर प्रेस,
रानीकटरा, लखनऊ

निवेदन

"सुदामा-चरित" का संपादन श्रीयुत कालिदास कपूर और श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कई वर्ष पहले किया था। बहुत समय से वह संस्करण सुलभ नहीं था। इसीलिए इस सरस खंडकाव्य का प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें भूमिका पूर्ववत् है, टिप्पणियाँ अवश्य अपेक्षाकृत विस्तृत और आलोचनात्मक हैं। साथ में सारे काव्य का भावार्थ और विशिष्ट स्थलों की व्याख्या है। आवश्यक पाठ-भेद भी देने का प्रयत्न किया गया है। आशा है, छात्रों के लिए यह संस्करण उपयोगी सिद्ध होगा।

विषय-सूची

१. भूमिका .... पृष्ठ ५

[प्रस्तावना—५, कवि-परिचय—१०, काव्य की कथा-वस्तु—११, भाषा—१३, चरित्र-चित्रण—१५, वर्णन—१९ ।

२. सुदामा-चरित (पाठ) .... पृष्ठ २१

३. पाठ-भेद .... पृष्ठ ६१

४. पाठ-भेद के शब्दार्थ .... पृष्ठ ६४

सुदामा-चरित

भूमिका

भारतीय साहित्य, जन-साधारण की धार्मिकता, ईश्वर-विश्वास, दैवी उपकरणों की अनुभूति, महापुरुषों और महावीरों के गुण-गान से प्रारंभ होता है ; यों तो संसार की सभी भाषाओं और सभी देशों में अपना-अपना वीर-युग है और उस वीर-युग के महावीर और उनके गुण गानेवाले महाकवि भी हैं। सिद्धांतः यह बात कही जा सकती है कि संसार की सभी भाषाओं में काव्य-कला का श्रीगणेश वीर-विरदावली से होता है। लेकिन साथ ही साथ यह भी कहना पड़ता है कि विभिन्न देशों के विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोणों के कारण महावीरों और महाकवियों की धारणा सर्वत्र एक-सी न हो सकी। होमर और वाल्मीकि का अंतर यूनान और भारत का अंतर है। आदि कवि वाल्मीकि का जन्म केवल इसी देश में संभव हो सकता था, इसीलिए कि राम का जन्म भी यहीं संभव था। महावीर और महापुरुष का जो आदर्श अपने देश में माना गया है वह तो युद्ध-वीरता और धर्म-भीरुता का समन्वय है। दूसरी ओर होमर के देश यूनान और अन्य पाश्चात्य देशों में महावीर की विभूति उसकी आसुरी शक्ति और संहारकारिणी प्रवृत्ति है। शरीर-बल में भीम होते हुए भी भीम को वह पद न मिल सका जो युधिष्ठिर को प्राप्त है। मेघनाद के मारने की क्षमता न रखते हुए भी राम का आसन लक्ष्मण के ऊपर है। पाश्चात्य जीवन और विचारधारा में आदर्श और दैवी मानव की अनुभूति और निष्ठा न हो सकी। इसका

कारण यह था कि वहाँ जीवन की धारणा ही सीमित रही। इस जीवन के आगे वहाँ और कुछ नहीं है। इसकी परिधि तो वहाँ बस व्यक्ति की अंतिम साँसों तक समाप्त हो जाती है। इसलिए पाश्चात्य साहित्य और कला में आदर्श की प्रतिपत्ति न हो सकी जीवन संघर्ष में जो जय और पराजय का स्थूल रूप है, उसके आगे वहाँ और कुछ न देखा गया और इसलिए हम देखते हैं कि एक्लीज हेक्टर की लाश को घसीटता हुआ चला जा रहा है और मारको उस अभागिनी युवती की आँखें निकाल लेता है जो उससे विवाह करने को राजी नहीं होती। यहाँ तो राक्षसराज रावण भी यह नहीं करता. यहाँ तो शस्त्रहीन शत्रु का मारना भी अधम है और भीष्म ने तो शिखंडी को देखते ही शस्त्र फककर आँखें मूँद ली थीं।

सिद्धांत और आदर्श का यह भेद समझ लेने पर और बातों में सभी भाषाओं की काव्य-साधना एक ही रूप में अग्रसर होती देख पड़ती है। होमर और होरास, वर्जिल और दांते, मिल्टन और योरप के अन्य यशस्वी कवि, घटनाओं के घात-प्रतिघात अपने नायकों के क्रिया-कलाप और उनकी जीवन-विधि का वैसा ही विशद विवरण देते हैं जैसा अपने यहाँ वाल्मीकि और व्यास, माघ और कालिदास, श्रीहर्ष और तुलसीदासजी ने दिया है। कविता अपने स्वाभाविक रूप में सर्वत्र वीरगाथा गा रही है। महापुरुषों का महान् जीवन, वीरों के साहस और वीरता की कथाएँ, और मानवजीवन की ऐसी कहानियाँ दया, प्रेम, त्याग, सत्यरक्षा और दैवी गुणों का ऐसा समावेश, जिसमें लोकोत्तर आनन्द, मनोरंजन और अनुकरण की सामग्री रही है, पहले-पहल कवियों की काव्य-रचना के लिए प्रेरक शक्तियाँ बनी हैं। प्रत्येक देश और प्रत्येक भाषा में जिन कवियों ने महापुरुषों के महान् जीवन पर आश्रित कथाओं को अपनी काव्य-भावना का आधार बनाया है, वे ही महाकवि के आसन पर प्रतिष्ठित हुए हैं। संस्कृत में वाल्मीकि, व्यास, भारवि, कालिदास, माघ और श्रीहर्ष की गणना इस

कोटि में होती है। वाल्मीकि और व्यास को तो हिंदू-संस्कृति में अब ऋषि का स्थान मिल चुका है। इसलिए अब इस कोटि में बृहत्त्रयी और लघुत्रयी के लेखक भारवि, माघ, श्रीहर्ष और कालिदास ही आते हैं।

हिंदी साहित्य में इस कोटि के कवियों में चंद, जायसी और गोस्वामी तुलसीदास की गणना सर्वप्रथम की जा सकती है। सूरदास ने कृष्ण के जीवन से काव्य-सामग्री तो ली है लेकिन उसमें न तो कोई क्रमोत्तर विकास है और न कृष्ण-कथा और कृष्ण-जीवन का सांगोपांग चित्रण ही। सूरदास साकार रूप भगवान के उपासक थे। कृष्ण की बाल-लीला तथा गोपी प्रेम और विरह-वर्णन में ही उनका काव्य समाप्त हो जाता है। कुछ चित्र कृष्ण की अन्य अवस्थाओं के भी हैं, लेकिन कथा में कोई प्रवाह न होने के कारण, वे इस कोटि में नहीं आ सकते। यों तो केशव की रामचंद्रिका भी महाकाव्य की पदवी पा चुकी है, लेकिन उसमें केशव की पंडिताई तथा कौशल का नमूना चाहे जितना मिल जाय, कथा-काव्य के स्वाभाविक प्रवाह का तो उसमें नितांत अभाव है। महाकाव्य और कुछ अंशों में खंड काव्य में भी कवि किसी न किसी प्रेरणा से प्रेरित होकर काव्य-रचना करता है। वह प्रेरणा कभी-कभी तो उस महावीर अथवा महानायक की उपासना होती है, जिसके महान् जीवन और महान् गुणों के वर्णन में कवि को आत्म-सुख प्राप्त होता है। दूसरी ओर युग-विशेष का विशेष धर्म जो कवि की दृष्टि में उपयोगी होता है, इस प्रेरक शक्ति का काम करता है। केशव के भीतर इस तरह की कोई भी प्रेरणा नहीं है। इसलिए हम उन्हें अपने साहित्य के रीतिकाल के अन्य कवियों का अग्रज मानकर छोड़ देते हैं। छंद-रचना, शब्द-योजना, मनोभावों के सूक्ष्म निदर्शन में रीति-काल के कवि अपना सानी नहीं रखते, इतना मानते हुए भी हम यह कहेंगे कि उन्होंने कौशल और चमत्कार को कला समझकर अपने साथ और सरस्वती के साथ भी अन्याय ही

किया था। काव्य-रचना का नैसर्गिक पथ छोड़कर रीति ग्रंथों में, अपनी शक्ति का अपव्यय कर इन महाकवियों ने अपने साहित्य का कोई विशेष हित नहीं किया जो दूसरे रूप में बहुत-कुछ संभव था।

प्रस्तुत कवि नरोत्तमदास अपने काव्य के नितांत संकीर्ण क्षेत्र में भी अपने काव्य-गुणों के कारण हिंदी कवियों की इस प्रथम कोटि में स्थान पाने के अधिकारी हो चुके हैं। सुदामा की दरिद्रता और कृष्ण की मित्रता के समन्वय में उन्हें वही प्रेरणा मिली थी जिसे हम काव्य-रचना का मेरुदंड कह सकते हैं। नरोत्तमदास की आत्मा, दरिद्र ब्राह्मण सुदामा के साथ द्वारकाधीश का व्यवहार, सांदीपनि गुरु के आश्रम में एक साथ विद्या के नाते मित्रता-निर्वाह और फलतः सुदामा का रंक से राजा हो जाना देखकर किस प्रकार कृष्ण की विभूतियों से आविर्भूत हो चुकी थी, यह उनकी वर्णन-शैली से स्पष्ट है। इसमें जो आदर्श है वह लौकिक होते हुए भी अलौकिक है। भारवि को शंकर-रूप किरात और अर्जुन के युद्ध में, कालिदास को रघुदिग्विजय और इंदुमती स्वयंवर में, माघ को चेदिराज शिशुपाल और कृष्ण के द्वंद्व में और श्रीहर्ष को नल-चरित्र में अनुभूति और अभिव्यक्ति का जो आधार मिला था, वही आधार नरोत्तमदास को दरिद्र सुदामा के जीवन-वृत्तांत में भी मिला। अमूर्त वस्तुओं के मूर्त बनाने में यदि कवि की सबसे बड़ी सफलता है तो कहा जा सकता है, इस संबंध में नरोत्तमदास को पूरी सफलता है और उन्हें सरस्वती के मंदिर में कालिदास और तुलसीदास की पंक्ति में बैठने का अधिकार है। तुलसीदास का स्वांतःसुखाय वाला सिद्धांत कालिदास और नरोत्तमदास पर समान रूप से लागू होता है।

सुदामा-चरित सदृश खंड-काव्य है। खंड-काव्य का क्षेत्र संकुचित रहता है। किसी घटना-विशेष को केंद्र मानकर इनकी रचना की जाती है। यहाँ तक कि जिन चरित्रों के आधार पर इसका निर्माण होता है, उनका चित्रण भी इसमें वहीं तक हो पाता है, जहाँ तक

कि उनका संबंध उस घटना-विशेष से रहता है। लक्षण-ग्रंथ साहित्य-दर्पण के अनुसार 'खंड काव्य भवेत्काव्यस्यैक देशानुसारि च'। इस प्रकार खंडकाव्य महाकाव्य का अंशमात्र कहा जा सकता है। उसमें अपेक्षित कथा भाग का अनुसरण करते हुए कवि को विशेष घटना या परिस्थिति तक ही अपनी शक्तियों को केंद्रीभूत करना होता है। महाकाव्य तो उसी प्रकार सब ओर से पूर्ण होता है, जिस प्रकार सब ओर से पूर्ण यह सृष्टि है। जीवन का एक भाग महाकाव्य का भार वहन नहीं कर सकता। उसमें तो जीवन की पूर्ण कल्पना का अनुसरण करना पड़ता है। मानव जीवन का संबंध इस वस्तु जगत् के साथ जितना गहरा और जितना व्यापक है, उसका पूरा विवरण महाकवि को महाकाव्य में देना पड़ता है और यही कारण है कि महाकाव्य में प्रकृति-वर्णन ऋतु-वर्णन, सभी रसों का परिपाक और सभी अवस्थाओं का चित्र मिलता है और बिना इन सभी वस्तुओं के जीवन की व्यापक धारणा पैदा नहीं हो सकती। इसलिए महाकाव्य में इन सबका होना अनिवार्य है। प्रस्तुत काव्य 'सुदामा-चरित' के कवि को श्रीकृष्ण और सुदामा की आदर्श मैत्री का, सुदामा की दरिद्रता और कृष्ण की अलौकिक उदारता का चित्र खींचना अभीष्ट था और उसने बस इतने ही में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है उसे तो काव्य-प्रेरणा इसी एक बात से मिली थी उसकी अनुभूति यहीं तक सीमित थी; इसीलिए अभिव्यक्ति भी यहीं तक समाप्त हो गयी। कुछ समालोचकों का यह कहना कि सुदामा-चरित का कथा-भाग इतना छोटा था कि उसका विस्तार कर महाकाव्य का निर्माण करना असम्भव सा था, सही नहीं है। छोटे से छोटे कथानक के आधार पर कवियों ने महाकाव्य की सफलता दिखला दी है। 'किरातार्जुनीय' की मूल कथा सुदामा चरित की मूल कथा से बड़ी नहीं है। किरात और अर्जुन के युद्धमात्र को लेकर महाकवि भारवि ने अठारह सर्गों का महाकाव्य लिख डाला।

शिशुपाल-वध की मूल कथा कुछ पंक्तियों में ही लिखी जा सकती है लेकिन माघ ने तो उसी को महाकाव्य का रूप दे दिया। इसलिए महाकाव्य के लिए लंबे कथानक की आवश्यकता नहीं है, वह तो महाकवि की क्षमता की बात है। नरोत्तमदास की क्षमता उस कोटि की नहीं थी, यह मान लेने पर भी उनकी काव्य-कथा में कोई कमी नहीं पैदा होती। इस साधारण कलेवर के खंड-काव्य सुदामा-चरित में उन्हें कहाँ तक सफलता मिली है, हमारी आलोचना की परिधि यहीं तक समाप्त हो जाती है और हमें इसी के भीतर रहना है।

कवि-परिचय

नरोत्तमदास का जीवन-वृत्तांत बहुत कम मिलता है। वे सीतापुर जिले के बाड़ी स्थान के रहनेवाले थे। यहीं इनका जन्म होना प्रसिद्ध है। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार यहाँ ये सं० १६०२ तक जीवित रहे। प्रस्तुत काव्य की सबसे प्राचीन प्रति जो मिलती है उसका लिपिकाल सं० १६६० है। इससे भी 'सरोज'-कार का उक्त कथन सत्य ही जान पड़ता है। इसके आधार पर विद्वान आलोचकों ने कविवर नरोत्तम के संबंध में अनेक अनुमान किये हैं परन्तु निश्चित रूप से उसका जन्म-मरण-काल तथा जीवन-घटनाएँ अभी तक ज्ञात नहीं है। इस उपलब्ध ग्रंथ 'सुदामा-चरित' के अतिरिक्त 'ध्रुव-चरित' और 'विचार-माला' नामक इनकी दो और अनुपलब्ध रचनाओं का भी नाम सुना जाता है। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में और कुछ भी ज्ञात नहीं है। भारतीय साहित्य और कला के उस महान् युग का यह एक महान आदर्श रहा है कि रचयिता अपनी रचना में मिलकर एक हो जाय और रचना के अतिरिक्त उसका कोई पृथक व्यक्तित्व आत्म-विज्ञापन के लिए न बचे। यही कारण है कि अजंता के वे महान् चित्र तो आज भी हैं, लेकिन उन महान् चित्रकारों के संबंध में किसको ज्ञात है? वाल्मीकि, व्यास;

कालिदास, भारवि, श्रीहर्ष, यहाँ तक कि कल्हण के संबंध में भी किंवदंतियों को छोड़कर और क्या शेष है? प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंटस्मिथ को इस बात पर आश्चर्य होता है कि अपने युग का श्रेष्ठ सम्राट् अकबर उसी युग के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष गोस्वामी तुलसीदास जी से परिचित नहीं। पाश्चात्य साहित्य और कला में आत्म-विज्ञापन और आत्म-रक्षा का सिद्धांत सदैव समान रूप से लागू रहा है। वहाँ तो कला की साधना सदैव व्यवसाय-रूप में होती चली आयी है। इसलिए व्यावसायिक जीवन और परिस्थितियों के संबंध में खोज करने पर प्रामाणिक बातें मिल जाया करती हैं। दूसरी बात इस संबंध में यह कहीं जा सकती है कि अपने देश में देवोपासना और धार्मिक अनुभूतियों को लेकर साहित्य और कला का निर्माण हुआ था। उसमें आनंद होता था, लेकिन उपभोग नहीं। दूसरी ओर पश्चिम में उपभोग की भावना सदैव प्रधान रही है।

काव्य की कथावस्तु

सुदामा की कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में दी हुई है। कविवर नरोत्तमदास ने उस कथा का रूप और आदर्श तो ज्यों का त्यों रहने दिया है, संवादों की मनोरम योजना और भावात्मक वर्णन शैली इनकी अपनी देन है। मूल कथा के अनुसार द्वारकाधीश श्रीकृष्ण और विदर्भ-देश में उत्पन्न सुदामा ब्राह्मण, दोनों ही अपनी बाल्यावस्था में उज्जयिनी में कुलपति संदीपनि के आश्रम में विद्याध्ययन करते थे। किसी दिन गुरुपत्नी ने इन दोनों को लकड़ी लाने के लिए जंगल भेजा। अवस्था में सुदामा कृष्ण से बड़े । गुरुपत्नी ने सुदामा को कुछ चने देकर इस बात का आदेश दिया कि यदि भूख लगे तो कृष्ण को भी खिलाना और स्वयं भी खा लेना। जंगल में पहुँचने पर अंधड़ और पानी आ गया। बादलों की गड़गड़ाहट और अँधेरे

के कारण दोनों सहपाठी भटक कर एक दूसरे से अलग जा पड़े। भूख लगने पर सुदामा ने रात को चने चबा लिये। प्रातःकाल संदीपनि गुरु इस चिंता में कि विद्यार्थियों पर रात में क्या बीती होगी, दैव-दैव करते जंगल में पहुँचे और उन दोनों को ढूँढ़ने और पुकारने लगे। बड़ी दौड़-धूप के बाद शिष्यों को सकुशल पाकर गुरुदेव प्रसन्न मन दोनों को साथ लेकर अपने आश्रम आये। आश्रम में पहुँचने पर कृष्ण को चनेवाली बात मालूम हुई और उन्होंने आवेश में सुदामा को शाप दिया कि तुम जीवन भर दरिद्र बने रहोगे। अध्ययन समाप्त करने के बाद कृष्ण तो द्वारकाधीश हुए और सुदामा को अपने देश पहुँचने पर सचमुच दरिद्रता ने आ घेरा। कुछ काल भीषण दरिद्रता में काट लेने के बाद किसी तरह निर्वाह होना नितांत असंभव हो उठा। पत्नी की प्रेरणा से सुदामा को द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के पास जाना पड़ा। कवि की दृष्टि में श्रीकृष्ण भगवान के अवतार होने के कारण अंतर्यामी थे। उन्होंने सुदामा की दशा स्वयं जान ली। उनकी कृपादृष्टि से सुदामा की दरिद्रता दूर हो गयी और उन्हें सभी सांसारिक वैभव प्राप्त हो गये। इसी कथा के संदर्भ पर कवि ने काव्य-रचना की है। इसमें स्त्री की प्रेरणा से द्वारका जाने और कृष्ण की कृपा से दरिद्रता से मुक्त होने भर की कथा दी गयी है बस, इतनी ही कथा को कवि ने मनोरम रूप में रख दिया है। इसके सुखद अन्त की प्राप्ति कवि की कामना थी। वह पूरी हुई। लौटने पर झोपड़ी की जगह दरिद्र सुदामा को राजप्रासाद मिले। सुदामा की तो वैभव-कल्पना भी कभी यहाँ तक न पहुँची थी। वह दरिद्रा ब्राह्मणी जिसे पहनने को फटा वस्त्र भी कठिनाई से मिलता था, अपनी सहचरियों के साथ राजरानी के रूप में अलौकिक वस्त्राभूषणों से सुसज्जित उस दरिद्र ब्राह्मण की अभ्यर्थना को दौड़ी। दरिद्र ब्राह्मण के भाग्य-विपर्यय में, उसकी चिरकामना की पूर्ति में, कविवर नरोत्तमदास को आत्म सुख मिल गया और वहीं पहुँचकर उनका काव्य-प्रवाह भी रुक गया।

भाषा

इस काव्य की भाषा स्वाभाविक और प्रसादगुण संपन्न है। इसकी व्रज-भाषा में कहीं-कहीं अवधी का भी सम्मिश्रण है। साधारण बोलचाल की भाषा से ही कवि ने अपना काम चला लिया है; रीतिकाल के कवियों ने हिंदी में जैसी धाँधली मचायी थी, शब्दों का जैसा तोड़ मरोड़ किया था, उसका सहारा कवि ने नहीं लिया। कहीं-कहीं शब्दों का रूप यदि कुछ बदला है तो केवल तुकांत के लिए; जैसे - सामा (सामान), मिताई (मित्रता)। लोकोक्तियों का समावेश भी बड़ी खूबी के साथ हुआ है। भाषा को स्वाभाविक और टकसाली बनाने में लोकोक्तियाँ बड़ी सहायक होती हैं। लोकोक्तियों के चुनाव में भी कवि ने सावधानी से काम लिया है। ऐसी लोकोक्तियाँ जो अर्थ बदलने के काम में आती हैं, सुबोध न होकर जटिल हुआ करती हैं। ऐसी लोकोक्तियों के प्रयोग की ओर कवि की अभिरुचि नहीं है। सुबोध और प्रचलित लोकोक्तियों का जो सहारा कवि ने लिया है, वह रीतिकाल के कवियों की तरह चमत्कार दिखाने के लिए नहीं, बल्कि अर्थ स्पष्ट और रोचक बनाने के लिए। वर्णन के प्रभाव के साथ-साथ भाषा का प्रवाह भी इस काव्य में उच्चकोटि का है। ऐसी सुबोध और साधारण भाषा में सुन्दर पद्यों की रचना कर कवि ने कविता के स्वाभाविक प्रवाह की भी रक्षा की है। अनावश्यक और कठिन शब्दों का प्रयोग भी नहीं मिलता। संयत भाषा विचारों का रूप भी नहीं बिगड़ने देती। भाषा की स्वाभाविकता विचारों को कितना मधुर और रोचक बना देती है! उदाहरण के लिए :—

दाहिने बेद पढ़ैं चतुरानन, सामुहे ध्यान महेस धर्‌यो है।
बाएँ दुऔ कर जोरे लिए, सब देवन साथ सुरेस खर्‌यो है।
एतेइ बीच अनेक लिए धन, पायन आय कुबेर पर्‌यो है।
देखि बिभौ अपनो सपनो, बपुरो वह बाम्हन चौंकि पर्‌यो है।

यह पद्य पढ़ लेने के बाद जैसे देर तक कानों में गूँजता रहता है; भाव और भाषा का प्रवाह मिलकर एक हो रहा है।

भाव-प्रधान होना काव्य-कला का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ लक्षण है। कवि किस अंश तक अपने हृदय का रस काव्य में उड़ेल सका है, किस अंश तक उसका काव्य मर्मस्पर्शी हो सका है, इस कसौटी पर भी यह काव्य खरा जँचता है। इस खंडकाव्य में जो स्थल सबसे अधिक मर्मस्पर्शी था उसका निर्वाह कवि ने सफलतापूर्वक किया है और वह है श्रीकृष्ण और सुदामा का मिलन। द्वारपाल के मुख से सुदामा का नाम सुनने ही :—

बोल्यो द्वारपालक 'सुदामा नाम पाँड़े' सुनि,
छाँड़े राज-काज ऐसे जी की गति जानै को ?
द्वारका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय,
भेंटे लपटाय करि ऐसे दुख सानै को ?

और आगे चलकर सुदामा की दुर्गति देखकर श्रीकृष्ण के हृदय में तो प्रेम और सहानुभूति की आँधी चल पड़ती है :—

ऐसे बेहाल बेवाइन ते पग कंटक जाल लगे पुनि जोए।
हाय! महादुख पायो सखा! तुम आये इतै न कितै दिन खोए॥
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं नैननि के जल सों पग धोए॥

अनुभावों की सम्यक् योजना के साथ-साथ इसमें कृष्ण की सहानुभूति का जो जीवित चित्र है, वह कितना मर्मस्पर्शी और कितना व्यापक है! इसी प्रसंग में कृष्ण का प्रेमोन्मेष उनके इस उपालंभ में कितना खिल उठता है! ब्राह्मणी ने भेंट के लिए जो चावल दिये थे, कृष्ण का राज-वैभव देखकर वह सुदामा की दृष्टि में बड़े हीन ठहरे और उन्होंने चावल की उस पोटली को काँख में दबा लिया। कृष्ण ने इस बात पर लक्ष्य करते हुए कितना सरस व्यंग्य किया है :—

आगे चना गुरुमातु दए ते लए तुम चाबि हमैं नहिं दीने।
स्याम कही मुसकाय सुदामा सों–'चोरी की बानि' मैं हौ जु प्रबीने।।
पोटली काँख में चाँपि रहे तुम खोलत नाहि सुधा रस भीने।
पाछिली बानि अजौं न तजी तुम तैसेइ भाभी के तंदुल कीने।।

शब्दों में अधिक वक्रता न होते हुए भी व्यंग्य कितना सरस हो उठा है! और फिर तो श्रीकृष्ण ने चावल चबाना जब प्रारंभ कर दिया, उस प्रेम और चाह से, तो फिर—

काँपि उठी कमला मन सोचत मोको कहा हरि को मन ओको?
रिद्धि कंपी सब सिद्धि कंपी, नव निद्धि कंपी बम्हना यह धौं को?
सोक भयो सुरनायक के जब दूसरि बार लियो भरि झौंको।
मेरु डर्‌यो बकसै जनि मोहि कुबेर चबावत चाउर चौंको।।

भगवान की क्षमता में जिनका विश्वास है, जो भक्त हैं, उनके लिए सृष्टि की शक्तियों का इस प्रकार भयभीत हो उठना कितना यथार्थ है! विभिन्न रसों का परिपाक दिखाने का अवसर तो कवि को इस संकुचित क्षेत्र में मिला नहीं; लेकिन भिन्न-भिन्न अवसरों पर मनोभावों की व्यंजना मार्मिक और उच्च कोटि की है। निराशा और पश्चाताप की झलक इस दोहे में कितनी व्यापक है :—

घर-घर कर ओड़न फिरे, तनक दही के काज।
कहा भयो जो अब भयो, हरि को राज समाज।।

सारे काव्य में भावों की लड़ियाँ इसी मार्मिकता के साथ पिरोयी गई हैं।

चरित्र-चित्रण

श्रीकृष्ण और सुदामा के चरित्र में कवि के अन्तर्चक्षुओं पर जो प्रधान प्रकाश पड़ा है वह तो है उन दोनों की मित्रता का निर्वाह। हिंदी साहित्य में मित्रता का इतना ऊँचा आदर्श केवल दो कवियों ने दिखलाया है। कविवर नरोत्तमदास ने श्रीकृष्ण और सुदामा की

मित्रता का वर्णन जिस आदर्श के अनुरूप किया है, उसी के अनुरूप गोस्वामी तुलसीदास ने रामचन्द्र और वनराज सुग्रीव की मित्रता का वर्णन और निर्वाह किया है। तुलसीदास का आदर्श इन चौपाइयों में स्पष्ट है :

जे न मित्र दुख होंहि दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र के दुख रज मेरु समाना ॥

× × ×

विपति काल कर सतगुन नेहा। स्रुति कह संत मित्र गुन एहा।

सुग्रीव के हित के लिए रामचंद्र ने बालि का बध कर उसे राज्य तो दे दिया, लेकिन उन्हें उसी सुग्रीव पर क्रोध भी करना पड़ा। वर्षा ऋतु के बीत जाने पर जब शरद ऋतु आ गयी और सुग्रीव ने सीता का कोई संदेश न दिया :

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी।
जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहुँ काली ॥

लेकिन यहाँ श्रीकृष्ण ने सुदामा के लिए जो किया उसमें तो कभी क्रोध और उपालम्भ का अवसर नहीं। श्रीकृष्ण ने सुदामा को जो राज-वैभव दिया उसके साथ प्रत्युपकार की कोई भावना नहीं थी। सुदामा के प्रति कृष्ण का शुद्ध प्रेम था। यवहार सापेक्ष तो संसार की निम्न कोटि की मित्रता हुआ करती है, जिसका अधिकांश स्वार्थ की धुरी पर घूमता रहता है। "कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग"— इसमें भी वही शुद्ध स्नेह की ध्वनि है। मित्रता यदि सापेक्ष होती, यदि उसमें समानता और पद-मर्यादा की भावना होती, तब फिर बेचारा सुदामा श्रीकृष्ण का मित्र कैसे होता।

मित्रता की सर्वोत्तम दशा तो अभिन्नता है जो श्रीकृष्ण और सुदामा के भीतर नरोत्तमदास को मिली थी, जिससे अभिभूत होकर उन्होंने इस काव्य-ग्रंथ की रचना की थी। मित्रता के दो मुख्य रूप हैं— पहला, मित्रता का शुद्ध स्वाभाविक रूप और दूसरा, उसका लौकिक

और व्यावहारिक रूप। सुदामा की स्त्री ने जब उन्हें श्रीकृष्ण के पास जाने के लिए प्रेरित किया तब सुदामा के सामने मित्रता का यही व्यावहारिक रूप था और इसलिए उन्होंने स्त्री से कहा :—

मित्र के जो जेइए तो आपहु जेवाइए।

× × ×

बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए॥

स्त्री से बातें करते समय सुदामा के मन में मित्रता का व्यावहारिक रूप ही अपना काम रहा था। "भुंक्ते भोजयते चैव" वाला सिद्धांत, जिसे सुदामा ने दुनिया में देखा और सुना था, उसी के अनुसार उन्होंने स्त्री को समझाना चाहा लेकिन अंत में जब स्त्री की प्रेरणा बढ़ती गयी, तब 'भेंट को चारि न चाउर मेरे' कहकर सुदामा ने उसी व्यावहारिक मित्रता का आश्रय लिया। लेकिन द्वारका पहुँचने पर तो बात ही और निकली। वहाँ तो व्यावहारिकता की दीवारें ढह चुकी थीं। सुदामा का नाम सुनते ही श्रीकृष्ण का दौड़ पड़ना, उन्हें हृदय से लगाकर आसन पर बैठाना और स्वयं अपने हाथ से परात के पानी से नहीं, आँसुओं से उनका पैर धो देना, यह सब मिलकर मित्रता की पहली परिभाषा चरितार्थ होती है। मित्रता के दोनों पहलू कवि ने बड़ी सुंदरता के साथ दिखला दिये हैं।

चरित्र के इस महान अंश के अतिरिक्त भी सुदामा, श्रीकृष्ण, सुदामा की स्त्री और द्वारका-निवासियों का चित्रण कवि ने बड़ी कुशलता से किया है। सुदामा भाग्य पर भरोसा रखनेवाला संसार के वैभव से उदासीन प्रकृत ब्राह्मण है। 'असंतुष्टा द्विजानष्टा' का आदर्श उन्होंने अच्छी तरह मान लिया है—

"औरन को धन चाहिए बावरि बाम्हन को धन केवल भिच्छा।

× × ×

"कै पढ़बो कै तपोधन है कन माँगत बाम्हनै लाज नहीं"

इन पंक्तियों के भीतर सुदामा की निस्पृहता देख पड़ती है और

साथ ही ब्राह्मण जीवन का वह अतीत विचारों में घूम जाता है जब परमार्थ और परलोक की साधना में इस जाति ने सांसारिक सुख और ऐश्वर्य को बंधन मानकर छोड़ दिया था--

सुख दुख करि दिन काटे ही बनैगे, भूलि-
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये।

× × ×

या बिधि बीत गये पन द्वै, अब तो पहुँचौ बिरधापन आय कै।
जीवन केतो है जावे लिये हरि सों अब होहुँ कनाउड़ो जाय कै॥

इन पंक्तियों से पता चलता है कि भीषण दरिद्रता की मार से भी सुदामा विचलित नहीं हुए। उनके भीतर आत्म-सम्मान अभी ज्यों का त्यों बना है; बल्कि यों कहें कि आत्म-सम्मान की रक्षा में श्रीकृष्ण की कोटि के मित्र के पास जाने में भी उन्हें संकोच हो रहा है।

सुदामा की स्त्री के भीतर गृहिणी का आदर्श है। दरिद्रता के कारण वह कभी सुदामा को अकर्मण्य नहीं कहती। उसे तो विश्वास है कि इस रोग की औषधि कृष्ण के पास है और मित्र के नाते उनके पास जाने में कोई लज्जा नहीं। कृष्ण की शक्तियों में उसे पूरी निष्ठा है और अंत में उसकी प्रेरणा सफल होती है। सुदामा के द्वारका जाने के साथ ही उसका भाग्यचक्र पलटा खाता है और सुदामा के लौटने पर वह साध्वी स्त्री के आदर्शों के अनुसार उनका स्वागत और उनकी सेवा करती है।

श्रीकृष्ण की मित्र-वत्सलता के संबंध में तो ऊपर कहा जा चुका है। उन्होंने सुदामा की झेंप मिटाकर जो उनका चावल चबाना प्रारम्भ किया है, इसमें मित्र के प्रति अभिन्नता तो है ही, साथ ही साथ इस प्रकार सुदामा के भीतर आत्मबल भी पैदा किया है। लोक-मर्यादा का विचार कर सुदामा ने उनसे किसी बात की याचना नहीं की और उन्होंने भी सब कुछ देकर यह नहीं कहा कि मैंने तुम्हें इतना दिया। लोक-रंजन और लोक-विस्मय की सामग्री इससे

और भी अधिक बढ़ गयी, जो सर्वथा श्रीकृष्ण जैसे सर्व शक्तिमान के अनुकूल है। उनका प्रभाव कितना व्यापक है! उनके समय में द्वारकावासी कितने संस्कृत और उदार हो चुके थे, इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :—

पूछे बिन कोऊ कहूँ काहू सों न करै बात,
देवता से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं?
देखत सुदामै धाय पौरजन गहे पाँय,
"कृपा करि कहौ विप्र कहाँ कीन्हौ गौन है?"
दीन जानि काहू पुरुष कर गहि लीन्हौ आय,
दीनहि दयार खरो कियौ, दीनबन्धु के जाय॥

इस प्रकार द्वारका के निवासी भी अपने आचरण में अनुकरणीय हैं।

वर्णन

इस काव्य में कवि की सबसे बड़ी सफलता उसकी वर्णन शैली है। जिस भाव और जिस परिस्थिति का वर्णन कवि ने किया, जैसे उसका चित्र खींच दिया है। सुदामा की दरिद्रता, स्त्री की प्रेरणा, त्यागी ब्राह्मण की निष्ठा द्वारका का वैभव कृष्ण-मिलन और अंत में दरिद्र ब्राह्मण का भाग्य-विपर्यय, जैसे एक के बाद दूसरा चित्र अलौकिक, आकर्षक और सौन्दर्य के साथ सामने आता और निकल जाता है। इस विषय में तो कदाचित् गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर हिंदी का और कोई कवि नरोत्तमदास से अधिक सफल नहीं है। काव्य के प्रारम्भ में ही सुदामा की स्त्री श्रीकृष्ण के इस रूप की चर्चा करती है :—

लोचन कमल दुख-मोचन तिलक भाल
स्रवननि कुंडल मुकुट धरे माथ है।
ओढ़े पीत बसन गरे में बैजयंती माल
संख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ है।

चतुर्भुज विष्णु का रूप तो हिंदी के बहुत से कवियों के वर्णन का विषय रहा है, लेकिन यह चित्र और तन्मयता शायद कहीं देखने को नहीं मिलती। सुदामा के आगमन की सूचना द्वारपाल श्रीकृष्ण को इन शब्दों में देता है —

सीस पगा न झगा तन मैं प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सों बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥

इस पद्य की ध्वनि इतनी सजीव है और इसका रूप इतना स्पष्ट हो उठा है कि जैसे पाठक की भावना को श्रीकृष्ण के द्वार पर खड़े सुदामा की वह दरिद्र दशा (फटे हुए वस्त्र, दुर्बल शरीर, भय और विस्मय के उद्वेग में चारों ओर देखता हुआ) साफ-साफ देख पड़ती है। यह तो वह चित्र है, जो शब्दों की सीमा पारकर रेखाओं और रंगों में व्यक्त हो रहा है। यह चित्र उस समय चरम विकास को प्राप्त होता है जिस समय श्री कृष्ण के आग्रह पर सुदामा काँख से निकाल चावल की पोटली खोलते हैं।

यहाँ गोस्वामी तुलसीदास की "गिरा अनयन, नयन बिनु बानी" वाली बात सिद्ध हो रही है। कृष्ण की ओर बड़े संकोच से देखते हुए सुदामा चावल निकालने के लिए वस्त्र की गाँठ खोल रहे हैं। गाँठ तो खुली नहीं, वह पुराना वस्त्र फट गया और फलतः चावल इधर-उधर बिखर गये। दरिद्रता की यह भीषण कल्पना और उस कल्पना का इतना मर्मभेदी चित्र सुदामा को लेकर जैसे जगत् का ओर-छोर छू रहा है। सुदामा की अनुभूति को कवि ने अपनी अनुभूति बनाया और उसके बाद उसे सारे संसार की अनुभूति बना दिया—यही तो कविकला की सबसे बड़ी सफलता है।

—कालिदास कपूर
—लक्ष्मीनारायण मिश्र

सुदामा-चरित

श्रीगनेस सुमिरन करौं, उपजै बुद्धि-प्रकास।
सो चरित्र बरनन करौं, जासों दारिद नास ॥ १ ॥

शब्दार्थ—मंगलाचरण। प्राचीन काव्य-पद्धति के अनुसार काव्य के आरंभ मे देव-स्तुति होना आवश्यक है। यहाँ कवि ने गणेश की स्तुति की है। गणेश सिद्धि के देवता हैं। गनेस—गणेश। सुमिरन (स्मरण)। प्रकास (प्रकाश)। बरनन (वर्णन)। दारिद (दारिद्रय), 'जासों दारिद नास' इन शब्दों में कवि का उद्देश्य झलक गया है। मंगल मूर्ति गणेश विघ्नों के हरण करनेवाले हैं। उनका स्मरण कर कवि ऐसी कथा कहता है, जिससे दारिद्रय का नाश होता है।

भावार्थ—'सुदामा चरित' नामक अपना खंडकाव्य आरंभ करने के पूर्व मैं श्रीगणेश जी का स्मरण करता हूँ। इनका स्मरण करने से अज्ञान के अंधकार का नाश होकर बुद्धि का प्रकाश फैल जाता है; गणेश जी का स्मरण करनेवाले की बुद्धि शुद्ध और तेज हो जाती है। इसके पश्चात् मैं श्रीकृष्ण के उस चरित्र का वर्णन करता हूँ जिससे भक्तों के दरिद्रतारूपी दुख का नाश हो जाता है।

ज्यों गंगा-जल पान तें, पावत पद निर्वान।
त्यों सिंधुर-मुख-बात तें, मूढ़ होत बुधिवान ॥ २ ॥

शब्दार्थ—तें—से; व्रजभाषा की विभक्ति है। 'निरवान (निर्वाण-पद) मोक्ष। 'निर्वाण' शब्द का प्रयोग गौतम बुद्ध के समय से आरंभ माना जाता है। उस समय से इसका अर्थ 'मोक्ष' या मुक्ति ही निश्चित हो गया है। सिंधुर—मद-जल जिसके बहता हो, हाथी। सिंधुर मुख (हाथी के मुखवाला) गणेश। सिंधुर-मुख बात— इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) गणेश जी की कथा (२) गणेश जी की

कृपा। 'बात' का अर्थ 'सेवा करना' भी किया जाता है। मूढ— मूर्ख। बुधिवान (बुद्धिमान)।

भावार्थ—गंगाजल हमारे यहाँ बहुत पवित्र माना गया है। उसका पान करनेवालों को मुक्ति-पद बहुत शीघ्रता से मिल जाता है—वे संसार के आवागमन से छूटकर मुक्त हो जाते हैं। हाथी के-से मुखवाले गणेश जी की कृपा से भी सभी व्यक्ति बुद्धिमान हो जाते है।

कृष्न-मित्र कइ जन्म को, ताको बरनन कीन।
सुख-सम्पति माया मिलै, सो उपदेस जु दीन्ह ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—कइ (कई) कितने ही ; हिंदुओं का विश्वास है कि कृष्ण और सुदामा की मित्रता अनादि काल से है। माया—लक्ष्मी, सांसारिक वैभव और सुख। विशेष—दूसरे चरण का 'जु' शब्द अर्थहीन है।

भावार्थ—श्रीकृष्ण और सुदामा की मित्रता एक जन्म की नहीं कई जन्मों की है। इसी मित्रता का वर्णन मैंने अपने काव्य मे किया है और इसमें यह उपदेश भी है कि संसार के सुख और यहाँ की संपत्ति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है।

बिप्र सुदामा बसत हैं, सदा आपने धाम।
भीख माँगि भोजन करैं, हिए जपैं हरिनाम ॥ ४ ॥

भावार्थ—सुदामा नामक एक ब्राह्मण था। वह सदैव अपने घर पर ही रहता था—किसी मित्र आदि के पास सहायता माँगने नहीं जाता था। भीख माँगकर भोजन करना और दिन-रात हृदय मे ईश्वर का नाम जपना - यही उसकी दिनचर्या थी।

ताकी घरनी पतिब्रता, गहे बेद की रीति।
सलज, सुसील, सुबुधि अति, पति-सेवा सों प्रीति ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—घरनी (गृहिणी) स्त्री। गहे—ग्रहण किये थी। वेद की रीति—वैदिक और शास्त्रीय धर्म; शास्त्रों में स्त्रियों के जो धर्म

कहे गये हैं। सलज (सलज्ज) लज्जावती, जो स्वभाव से ही लजीली थी; लज्जा ही भारतीय स्त्रियों का आभूषण कही गयी है।

भावार्थ—सुदामा की स्त्री बड़ी पतिव्रता, लज्जाशीला, सुशीला, और सुन्दर बुद्धिवाली थी। वेद - शास्त्र में स्त्रियों के जो कर्तव्य बताये गये है, उनका वह सदैव पालन करती थी। पति की सेवा भी वह बड़ी लगन और रुचि से करती थी।

कही सुदामा एक दिन, 'कृष्न हमारे मित्र'।
करत रहति उपदेस तिय, ऐसो परम बिचित्र ॥ ६ ॥

भावार्थ—एक दिन सुदामा ने स्त्री से किसी बात के प्रसंग में कहा—श्रीकृष्ण से मेरी पुरानी मित्रता है। यह बात जानने के बाद उनकी स्त्री समय-समय पर ऐसे उपदेश दिया करती थी।

स्त्री—महादानि जिनके हितू, जदु-कुल-कैरव चंद।
ते दारिद-संताप तें, रहैं न किम निरद्वंद्व ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—महादानि (महादानी) सर्वस्व दान करनेवाला। हितू—हित करनेवाला। जदु-कुल कैरव-चंद (यदुकुल-कैरव-चद्र) यादव कुलरूपी कुमुद के चंद्रमा। चंद्रमा को देखकर कुमुदिनी फूल उठती है। श्रीकृष्ण अपने यदुकुल को हर्ष देनेवाले थे। इसलिए यहाँ यदुकुल-कैरव-चंद का अर्थ हुआ कृष्ण। ते—वे। दारिद्र संताप तें—दरिद्रता के दुःख से। किमि—क्यों? किसलिए। निरद्वद्व (निर्द्वंद्व) द्वंद्व-रहित, निश्चिंत, चिंता - रहित। अलंकार—रूपक और परिकर।

भावार्थ—स्त्री ने सुदामा को उपदेश देते हुए कहा यादव-कुल रूपी कुमुद के लिए जो चंद्रमा के समान है और जो अपना सर्वस्व दान देनेवाले प्रसिद्ध दानी हैं, वे श्रीकृष्ण जिसके मित्र है, उस व्यक्ति को, उनकी मित्रता से लाभ न उठाकर क्या दरिद्रता का कष्ट सहना चाहिए? ऐसे दानी की सहायता लेकर उसे तो निर्धनता की ओर से सदा के लिए निश्चिंत हो जाना चाहिए।

सुदामा—कह्यो सुदामा—'बाम ! सुनु, बृथा और सब भोग ।
सत्य भजन भगवान को, धर्म सहित जप-जोग' ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—बाम—(वामा) स्त्री । भोग—(भोग्य) संसार के सुख-साधन । वृथा—व्यर्थ । जप-जोग—जप और योग करना, भगवान की स्तुति और इंद्रियों को वश में करना ।

अलंकार—आत्मतुष्टि प्रमाण ।

भावार्थ—स्त्री ने सुदामा को उपदेश दिया—महादानी श्रीकृष्ण की सहायता से तुम्हें अपनी दरिद्रता के कष्ट से छुटकारा पा लेना चाहिए । यह सुनकर सुदामा ने उत्तर दिया—तुम दरिद्रता से छुटकारा पाकर संसार के सुख भोगना चाहती हो; परंतु यह ध्यान रखो कि संसार के सारे भोग-विलास व्यर्थ हैं ; उनसे मनुष्य को सच्चा आनंद नहीं मिलता । यदि कोई मनुष्य चाहता है कि उसे सच्चा सुख मिले, तो उसे अपने मन को धन-संपत्ति की ओर से हटाकर भगवान का भजन करना चाहिए, जप-तप और धर्म की बातों मे लगना चाहिए; क्योंकि मन को सच्चा सुख और आनन्द देनेवाली ये ही बातें हैं ।

स्त्री—लोचन-कमल दुख-मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुंडल मुकुट धरे माथ हैं ।
ओढ़े पीत बसन गरे मैं बैजयंती-माल,
संख, चक्र, गदा और पद्म लिए हाथ हैं ॥
कहत नरोत्तम संदीपनि गुरू के पास,
तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं ।
द्वारिका के गये हरि दारिद हरैंगे पिय,
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—दुख-मोचन—दुख से छुड़ानेवाले । भाल—मस्तक का अग्रभाग, ललाट । स्रवननि—(श्रवण) कानों में । पीतबसन—पीतांबर । गरे—गले । पुरानी हिंदी में 'ल' के लिए कभी-कभी 'र' का

प्रयोग किया जात था। बैजयंती-माल—पाँच प्रकार के रत्नों की आजानु (घुटनों तक) लम्बी माला। संदीपनि (सादीपनि) जिनके यहाँ कृष्ण और सुदामा ने एक साथ शिक्षा पायी थी।

अलंकार—रूपक, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, तथा श्रुत्यनुप्रास क्रमशः आये है। परिकर ('हरि' शब्द में)।

विशेष—यहाँ प्रथम चार पंक्तियों में श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन उन्हें विष्णु का अवतार मानकर किया गया है।

भावार्थ—सुदामा की ऊपर लिखी बातें सुनकर स्त्री ने समझा कि मेरे पति श्रीकृष्ण को कदाचित् ससार के साधारण मित्रों के समान समझ रहे है और इसी से उनसे सहायता लेने में सकुचा रहे है। अतएव उसने इन पक्तियों में पति को समझाया है कि श्रीकृष्ण साधारण व्यक्ति नहीं, परब्रह्म परमात्मा के अवतार है। सदीपन गुरु के यहाँ जो श्रीकृष्ण सहपाठी होने के कारण तुम्हारे मित्र है, उन्हे तुम सासारिक व्यक्ति मत समझो। अब वे द्वारका के स्वामी है, इसलिए भी मै तुम्हें उनसे सहायता माँगने को नही कहती। मेरा विश्वास तो यह है कि कमल के समान नेत्रवाले, माथे पर तिलक लगाये, कानों में कुंडल पहने, पीतांबर ओढ़े, गले में बैजयंती माल और हाथ मे शख, चक्र, गदा और कमल धारण किये जिस चतुर्भुजी मूर्ति का सबने परमात्मा के रूप मे वर्णन किया है, वास्तव में श्रीकृष्ण उन्ही का अवतार है। ईश्वर दुखों का नाश करनेवाला और अनाथों का नाथ है—यह तो तुम भी मानते हो। अतएव उन्हीं के अवतार श्रीकृष्ण की राजधानी द्वारका मे यदि तुम जाओगे तो, मुझे पूरा विश्वास है कि वे तुम्हारी दरिद्रता दूर करके हमे अवश्य सुखी करेगे।

सुदामा—

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय ! ताको कहा अब देति है सिच्छा,
जे तप कै परलोक सुधारत संपति की तिनके नहिं इच्छा ॥

मेरे हिए हरि के पद पंकज, बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिए बावरि ! बाम्हन को धन केवल भिच्छा।१०

शब्दार्थ—सिच्छक—(शिक्षक) शिक्षा देनेवाला, उपदेशक। सिच्छा—(शिक्षा)। जे—जो। तप कै—तप द्वारा, तप से। सिगरे—सारे, समस्त। पंकज (पंक+ज) कीचड से पैदा होनेवाला—कमल। परिच्छा (परीक्षा)। भिच्छा—(भिक्षा)। बावरि—बावली, पगली।

भावार्थ—स्त्री का उपदेश सुनकर सुदामा चिढ़ गये; उसकी बातों से उनके ब्राह्मणत्व को ठेस पहुँची। स्त्री के लिए संसार में सबसे बड़ी चीज धन है। सुदामा का कहना है कि धन पेट भरने का साधन है और ब्राह्मण को पेट भरने के लिए भिक्षा ही काफी है। दूसरी बात स्त्री को सुदामा यह बतलाना चाहते है कि धन से इस लोक के सुख थोड़े-बहुत भले ही प्राप्त हो जायँ, परंतु उससे परलोक नहीं बन सकता और जो लोग परलोक सुधारना चाहते है उनके मन में धन का लोभ कभी नही होता। तीसरी बात यह है कि सुदामा ईश्वर के इतने सच्चे भक्त थे कि अपनी भक्ति की परीक्षा देने को हजार बार तैयार थे। ऐसा निर्लोभी व्यक्ति कभी भी धन की इच्छा नही कर सकता। इससे सुदामा ने कहा—सारे ससार को तो मैं शिक्षा देता हूँ और तू मुझे उपदेश देकर मेरा कर्तव्य बता रही है ! क्या तू नहीं जानती कि जिन्होंने तप करके परलोक की प्राप्ति का निश्चय कर लिया है, वे इस संसार के सुख और यहाँ का धन नहीं चाहते। मैं तो ईश्वर का परम भक्त हूँ; उनकी भक्ति में ही सब प्रकार से सुखी हूँ; दरिद्रता का कष्ट मुझे कभी जान नहीं पड़ता। तू जब चाहे इस बात की परीक्षा ले सकती है। जो सांसारिक व्यक्ति हैं, धन की चाह उनको ही हो सकती है। मुझ जैसे तपस्वी ब्राह्मण की आवश्यकता तो साधासण भिक्षा से ही पूरी हो जाती है।

स्त्री—

दानी बड़े तिहुँ लोकन में, जग जीवन नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली बिधि, सिद्धि करौ पिय ! मेरौ मतौ लै।
दीनदयालु के द्वार न जात, सो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्रीजदुनाथ से जाके हितू, सो तिहूँ पन क्यों कन माँगत डोलै।११

शब्दार्थ—तिहुँलोक—(त्रिलोक) स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, तीनों लोक। नामलै—नाम लेकर, स्मरण करके। सिद्ध करो—सिद्धि करो, प्रस्थान करो (बोल-चाल का मुहावरा है)। मेरो मतो लै—मेरी सम्मति से, मेरी राय मानकर। दीन ह्वै बोलै दीन होकर भिक्षा माँगता फिरता है। पन—अवस्था। कन—(कण) भीख के दाने। डोलै घूमा करता है। सो तिहूँपन क्यों कन माँगत डोलै इसके अर्थ दो प्रकार से किये जाते है—(१) वह तीनों अवस्थाओं (बाल, युवा और वृद्ध) में क्यों भिक्षा माँगता फिरे। (२) वह तीसरे पन अर्थात् बुढ़ापे में भी क्यों भीख माँगता फिरे। दूसरे अर्थ में ज्यादा सुदरता है।

भावार्थ - स्त्री ने सुदामा के सब तर्कों में से उनकी भिक्षा की चाह का ही उत्तर दिया। उसने कहा - मैं मानती हूँ कि ब्राह्मण को भिक्षा से ही सतुष्ट रहना चाहिए; परन्तु भिक्षा किससे लेनी चाहिए, इस विषय में मेरा तुमसे मतभेद है। अब तक तुमने जीवन की तीन अवस्थाएँ साधारण मनुष्यों के द्वार पर जाते-जाते-बिदा दीं। अब मैं नहीं चाहती कि यह चौथी अवस्था भी इसी तरह बीत जाय। यदि तुम्हारा परिचय श्रीकृष्ण-जैसे उस महादानी से न हुआ होता, जिसका नाम लेकर संसार जीवित रहता है और जो अनाथों की खोज-खबर लेने के लिए सदा तैयार रहते है, तो मैं तुम्हारी दिनचर्या में बाधा न डालती। मुझे तो केवल यह कहना है कि जिस प्रकार तुम अब तक दर दर मारे मारे फिरे, उसी प्रकार श्रीकृष्ण जैसे दीनदयाल के द्वार पर जाओ। जिस व्यक्ति की मित्रता श्रीकृष्ण—जैसे दानियों से हो, वह जीवन

भर भीख ही माँगता फिरे, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। अतएव मेरी सम्मति में तुम वहाँ जाओ, तुम्हारा अवश्य भला होगा।

सुदामा—

छात्रन के पन जुद्ध, जुवा, सजि बाजि, चढ़ैं गजराजन ही।
बेसि के बानिज और कृषी, पन सूद्र को सेवन-साजन ही॥
विप्रनि के पन है जु यही, सुख-सपति सों कछु काज नहीं।
कै पढ़िबो, कै तपोधन है, कन माँगत बाह्मनै लाज नहीं॥१२॥

शब्दार्थ—पन—इस शब्द का अर्थ प्रण या प्रतिज्ञा किया जाता है, वस्तुतः व्रजभाषा में यह शब्द 'जीवन-व्यवसाय' के अर्थ में प्रयुक्त होता है और इसका शुद्ध रूप 'पण' है। जुद्ध (युद्ध) लड़ाई। बैस (वैश्य)। बानिज—(वाणिज्य) व्यवसाय। सेवन-साजन—सेवा करना। कै (किंवा) अथवा, या। कै पढ़िबो कै तपोधन है—या तो वेद आदि पढ़ना या तप करना है।

अलंकार—आत्म-तुष्टि प्रमाण।

भावार्थ—स्त्री ने भिक्षा माँगने की बात को बहुत तुच्छ समझा; इसलिए सुदामा इस छन्द में समझाते हैं कि ब्राह्मणों के लिए भिक्षा माँगना लज्जा की बात नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य और शूद्र, समाज इन चार वर्गों में बटा हुआ है। शूद्रों का कार्य सेवा करना, वैश्यों का व्यापार और खेती करना और क्षत्रियों के लिए हाथी-घोड़ों पर सवार होकर युद्ध और देश-रक्षा करना जीवन के व्यवसाय है। ब्राह्मण वर्ग का कर्तव्य इन तीनों वर्गों से भिन्न है। पढ़ना और तप में लगे रहना—ये ही दो उसके प्रमुख कर्तव्य हैं और इनका निर्वाह वह तभी कर सकता है जब वह-सुख सम्पति की चाह न करे। जीवित रहने के लिए उसे जो धन-अन्न चाहिए वह भिक्षा से प्राप्त हो सकता है। इसलिए भिक्षा माँगना ब्राह्मण के लिए लाज की बात नहीं है।

स्त्री—

कोदौं सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहत हौं दधि, दूध मिठौती।
सीत बितीत भयो सिसियातहिं, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥

जौ जनती न हितू हरि-सों तुम्हैं, काहे को द्वारका पेलि पठौती।
या घर तैं कबहूँ न गयो पिय ! टूटो तवा अरु फूटी कठौती।१३।

शब्दार्थ—कोदों—(कदन्न) एक प्रकार का सस्ता और मोटा अन्न; सवाँ—(शामक) साँवाँ; कोदो-साँवाँ बरसात में पैदा होनेवाले अन्न हैं; लेकिन इनकी गणना धान की कोटि में नहीं है; जुरतो—जुड़ता, मिलता। मिठौती—मीठा, मिठाई। बितीत—(व्यतीत) बीतता; सिसियातहिं—सी सी करते हुए, जाड़े से ठिठुरकर काँपते हुए; हौं हठती—हठ छोड़ देती या हेठी कराती; पै तुम्हें न हठौती—ठेल कर भेजती या बाध्य कर भेजती; यह पूर्वी बोली का मुहावरा है; इसका प्रयोग 'जबरदस्ती' करने के अर्थ में होता है।

भावार्थ—सुदामा ने बार बार सुख - सम्पति के त्याग पर जोर दिया, स्त्री ने इससे समझा कि सुदामा उसे इनकी लोभिन समझते हैं। इस सन्देह को निकालने के उद्देश्य से वह कहती है कि मैं दूध, दही, मिठाई वा सुन्दर सुन्दर वस्त्र और आभूषण नहीं चाहती। संसार में जीवित रहने के लिए कोदों, साँवाँ जैसे मोटे - मोटे अनाज हों और जाड़े मे मोटे मोटे वस्त्र ही यदि मुझे मिल जाते तो मैं तुम्हें द्वारका भेजने की आवश्यकता न समझती। जीवन के इतने दिन मैंन बड़े कष्ट से बिताये है; कभी पेट भर अनाज मुझे नहीं मिला। जाड़ा सिसियाते ही कटा और घर में दरिद्रता का ऐसा साम्राज्य छाया रहा कि टूटे-फूटे बर्तन और कठौती पर ही जीवन के इतने दिन कटे। जब तीन अवस्थाएँ इस प्रकार काट ली थीं तो चौथी भी निःसंदेह काट ही लेती यदि मुझे इस बात का पता न चलता कि श्री कृष्ण जैसे दानी और दयालु तुम्हारे मित्र है। इस मित्रता की कथा जानकर ही मैं तुम्हें द्वारका भेजना चाहती हूँ। मेरा हृदय कहता है कि वहाँ जाने से तुम्हें केवल धन-संपत्ति की ही प्राप्ति नहीं होगी ; असाधारण मित्र के दर्शन से और भी अनेक लाभ होंगे।

सुदामा—

छाँड़ि सबै जक, तोहि लगी बक, आठहु जाम यहै मन ठानी।
जातहिं दैहै लदाय लढ़ा भरि, लैहौं लदाय यहै जिय जानी॥
पावै कहाँ ते अटारी-अटा, जिनके बिधि दीन्हीं है टूटी-सी छानी।
जोपै दरिद्र लिलार लिख्यौ तौपै काहु सों मेटि न जात अजानी॥१४॥

शब्दार्थ—जक लगाना—किसी बात की बार-बार रट लगाना; बक—बक, बकवाद; एक ही बात को हठ कर कहते जाना ; जाम (याम) पहर ; दैहैं—देंगे ; दैहैं लदाय—भर देंगे, लदा देंगे ; लढ़ा—लढ़िया, बैलगाड़ी, छकड़ा ; मुदामा झुंझलाहट में कह जाता है कि तू शायद यह समझ रही है कि मेरे वहाँ जाते ही लढ़िया (छकड़े) भर - भर सामान लदाकर कृष्ण भेज देंगे ; अटारी— कई मंजिल का पक्का मकान ; अटारी-अटा—छज्जों वाले सुन्दर पक्के भवन; छानी—छान्ह, छप्पर, फूस की झोपड़ी ; जो पै—यदि, जो कहीं ; काहू तैं—किसी से भी ; मेटि न जात—मिटाया नही जा सकता ; अजानी—अनजान, अबोध स्त्री।

भावार्थ—स्त्री के मुख से बार बार अपनी दरिद्रता सुनकर सुदामा झुंझला गया। उसने झल्लाकर कहा—दुनियाँ भर की और सब बातें छोड़कर दिन रात तुझे एक ही बक लगी रहती है। श्री कृष्ण कैसे भी हों, पर क्या तू समझती है कि मेरे द्वारका पहुँचते ही वे मुझे गाड़ियाँ भर भर कर धन-सम्पत्ति सौंप देंगे ? तुझे तो यह सोचकर सतोष करना चाहिये कि यदि हम निर्धन हैं तो हमारे भाग्य में यह निर्धनता लिखी ही होगी। क्या तू नहीं जानती कि जिनके भाग्य में टूटी फूटी झोपड़ी बदी है उन्हें ऊँचे ऊँचे महल नहीं मिलते। भाग्य की यह प्रबलता समझकर तुझे अपनी दरिद्रता में ही संतोष करना चाहिए।

स्त्री—

पूरन पैज करी प्रहलाद की, खंभ सों बाँध्यो पिता जिहि बेरे।
द्रौपदी ध्यान धर्‌यो जबहीं, तबहीं पट-कोट लगे चहुँ फेरे॥

ग्राह ते छूटि गयंद गयो पिय ! है हरि को निहचै जिय मेरे।
ऐसे दरिद्र हजार हरैं वै कृपानिधि लोचन कोर के हेरे ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—पैज—टेक, प्रतिज्ञा; बेरे (बेला) समय; पट कोटि—कपड़ों का ढेर ; चहुँफेर—चारों ओर ; गयंद—(गजेंद्र) हाथी ; निहचै—(निश्चय)। हेरे—देखने से; लोचनकोर के हेरे—जरा सी दयादृष्टि से देखकर ही। अलंकार—विभावना।

विशेष—इस छंद में प्रहलाद, द्रोपदी-चीरहरण, गज-ग्राह युद्ध—इन तीन पौराणिक प्रसंगों की ओर संकेत किया गया है। ये पौराणिक प्रसंग इस बात का प्रमाण हैं कि जिस पर भी संकट पड़ता है, वह यदि अपनी शक्ति का भरोसा छोड़कर ईश्वर की शरण में जाय तो यह उसकी अवश्य रक्षा करता है।

भावार्थ—सुदामा ने दरिद्रता को भाग्य का फल बताकर स्त्री को शांत करना चाहा; परन्तु वह ऐसी चतुर बुद्धिवाली थी कि उसने इस तर्क को भी काट दिया। भाग्य में लिखी दरिद्रता वही मिटा सकता है जिसमें अलौकिक शक्ति हो। यहाँ वह ईश्वर के विभिन्न अवतारों में किये गये अद्भुत कार्यों की चर्चा करके यह जताना चाहती है कि जिसने नरसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपु के अत्याचारों से प्रहलाद की रक्षा की, दुर्योधन की सभा में वस्त्रों का ढेर लगाकर द्रोपदी की लाज बचायी और ग्राह के फंदे में फँसे हुए हाथी की रक्षा की, वह ईश्वर हमारी साधारण दरिद्रता क्या, इससे हजार गुने कष्ट और संकट केवल एक बार कृपादृष्टि से देखकर दूर कर सकता है। श्रीकृष्ण की दयालुता और भक्तवत्सलता पर मुझे पूरा-पूरा विश्वास है। इसी लिये मैं बार-बार उनके पास जाने को कहती हूँ।

सुदामा—

चक्रवै चौकि रहे चकि-से तहाँ भूले-से भूप कितेक गिनाऊँ।
देव, गंधर्व औ किन्नर, जच्छ से साँझ लौ ठाढ़े रहैं जिहि ठाऊँ।
तैं दरबार बिलोक्यौ नहीं, अब तोहिं कहा कहिकै समुझाऊँ।
रोकिय लोकन के मुखिया, तहँ हौं दुखिया किमि पैठन पाऊँ ।१६।

शब्दार्थ—चक्कवै—(चक्रवर्ती) सम्राट । चौकि रहे—'चौकी' का प्रयोग द्वार या ड्योढ़ी के अर्थ में किया जाता है; 'चौकीदार' शब्द का प्रयोग भी कदाचित् इसी अर्थ से आरंभ हुआ होगा। अतः यहाँ इसका अर्थ है—बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा जहाँ चौकी पर द्वारपालों की तरह खड़े-खड़े (वहाँ का भाव देखकर) चकराया करते है। चकि से—चकित से, भयभीत से, हैरान से। भूले से—चकित, भौचक्के। कितेक—कितने ही। गंधर्व, किन्नर, यक्ष—देवताओं की जातियाँ जो गाने-बजाने (नृत्य-सगीत शास्त्र) मे दक्ष मानी जाती हैं। साँझ लौं—संध्या तक, शाम होने तक। ठाऊँ—स्थान। लोकन के मुखिया—बड़े-बड़े लोकों के मुखिया वहाँ दरवाजे पर ही रोक लिए जाते हैं। पैठन पाऊँ—पैठ सकूंगा, घुस सकूंगा।

भावार्थ—दरिद्रता और भाग्य के तर्क में स्त्री से हार कर सुदामा ने एक ऐसी बात कही जिसका ज्ञान घर मे रहनेवाली नारियों को नहीं होता। सुदामा ने कहा—द्वारका पहुँच जाना तो सरल है, परंतु द्वारपालों से पिंड बचाकर श्रीकृष्ण के दरबार तक पहुँचना बहुत कठिन है। मुझ दरिद्र और दीन की तो गिनती ही क्या, अनगिनती चक्रवर्ती राजा भी वहाँ इधर-उधर टकराते फिरते हैं। इस पृथ्वी के निवासियों की बात तो जाने दो; बड़े-बड़े देवता, गंधर्व, किन्नर और यक्ष भी सवेरे से शाम तक वहाँ खड़े रहते हैं, दर्शन नहीं पाते। तू जो बार बार दर्बार जाने को कह रही है सो इस नासमझी ही के कारण कि तूने कभी दर्बार नहीं देखा। तू ही बता कि बड़े-बड़े लोकपालों को जब वहाँ के द्वारपाल दरबार के बाहर ही रोक देते हैं, तब मैं दीन-दुर्बल वहाँ कैसे पहुँच पाऊँगा।

स्त्री—

भूले से भूप अनेक खरे रहौ ठाढ़े रहौ तिमि चक्कवै भारी।
देव, गंधर्व औ किन्नर, जच्छ से रोके जे लोकन के अधिकारी।

अंतरजामी वै आपहीं जानिहैं, मानो यहै सिख आजु हमारी।
द्वारिकानाथ के द्वार गए सब ते पहले सुधि लेहैं तिहारी ॥१७॥

शब्दार्थ—तिमि—उसी तरह। अन्तरजामी—(अन्तर्यामी) मन की बात जानने वाले। सिख (शिक्षा)। सुधि—खबर, खोज।

विशेष—इस छंद में कवि सुदामा की स्त्री का सरल हार्दिक विश्वास बड़ी कुशलता से दिखलाता है।

भावार्थ—सुदामा के इस तर्क का भी स्त्री पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसने उत्तर दिया कि बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा, देव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और लोकपाल तो द्वार पर भले ही रोक दिये जायँ, परन्तु तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार नहीं होगा। श्रीकृष्ण अन्तर्यामी है। सबके हृदय की बात वे जानते हैं। सिंहासन पर बैठे-बैठे ही उन्हें पता रहता है कि द्वार पर कौन है और किस उद्देश्य से आया है। इसलिए मेरा विश्वास करो। यदि तुम द्वारका जाओगे तो सबको छोड़कर वे पहले तुम्हारी ही सुधि लेंगे।

सुदामा—

दीनदयाल को ऐसोई द्वार है दीनन की सुधि लेत सदाई।
द्रौपदी तैं, गज तैं, प्रहलाद तैं, जानि परी न बिलम्ब लगाई।
याही ते भावति मो मन दीनता जौ निबहै 'नबही जस आई।
जौ ब्रजराज सौं प्रीति नहीं केहि काज सुरेसहु की ठकुराई ।१८।

शब्दार्थ सदाई—सदा, सदैव। याही तें—इसी से। भावत—भाती है, अच्छी लगती है। जौ जो। जस—जैसे। जो निबहै—यदि निभ जाय। केहि काज—किस काम की। सुरेसहु की ठकुराई—इंद्र का पद भी। ठकुराई—प्रभुता। अलंकार—परिकर (दीनदयाल में) हेतु दूसरे पद में और आत्म-तुष्टि प्रमाण अन्त में।

भावार्थ—स्त्री के इस तर्क से सुदामा पराजित हो गया। अंतर्यामी प्रभु की भक्तवत्सलता का ध्यान करके गदगद कंठ से उसने कहा—तेरी यह बात मैं मानता हूँ; श्रीकृष्ण का दरबार सचमुच ऐसा ही है कि

वहाँ पहुँचते ही वे दीन-दुखियों की तुरंत सुधि लेते हैं। द्रोपदी, गज और प्रहलाद की उन्होंने जिस प्रकार रक्षा की, उससे भी उनकी भक्त-वत्सलता ही सिद्ध होती है। वे दीन-दुखियों पर दया करते हैं। इसी कारण मुझे दीनता और दुख बहुत अच्छे लगते हैं, क्योंकि दीन और दुखी रहने पर ही ईश्वर का ध्यान बना रहता है। मैं चाहता हूँ कि जिस प्रकार अब तक हमने जीवन के दिन काटे हैं थोडे ही दिन ऐसे ही और निभा लेते तो बड़ा अच्छा था। हो सकता है तेरी इच्छा के अनुसार द्वारका जाने पर श्रीकृष्ण की परम कृपा से इंद्र का वैभव मुझे को प्राप्त हो जाय; लेकिन उसके मिलने के बाद यदि श्रीकृष्ण की भक्ति मुझमें न रह गयी तो मेरी दृष्टि में इंद्र का वह वैभव भी व्यर्थ होगा।

स्त्री—फाटे पट, टूटी छानि खायो भीख माँगि आनि,
बिना जग्य बिमुख रहत देव - पित्रई।
वे हैं दीनबंधु दुखी देखि कै दयाल ह्वै हैं,
दैहैं कछु भलो, सो हौं जानत अगत्रई॥
द्वारिका लौं जात पिय! केतौ अरसात तुम,
काहे कौ लजात, भई कौन-सी बिचित्रई।
जौ पै सब जनम दरिद्र ही सतायौ तौ पै,
कौन काज आइहैं कृपानिधि की मित्रई॥१६॥

शब्दार्थ—छानि—झोपड़ी। जग्य (यज्ञ); बिमुख (विमुख) प्रतिकूल। पित्रई—पितर, पितृगण। हौं—(अहम्) मैं। अगत्रई (अग्रतोपि) आगे ही से, पहले ही से। केतो—कितना। इतना क्यों अलसात—इतना आलस्य क्यों करते हो। विचित्रई—बिचित्रता। जो पै—जो कहीं। तो पै—तो फिर।

विशेष—'विचित्रई' और 'मित्रई' शब्दों का शुद्ध रूप 'विचित्रता' और 'मित्रता' होता है। यहाँ इनका प्रयोग उक्त रूप में तुक बैठाने

के लिए किया गया है। 'मिताई' शब्द जो व्रजभाषा में पर्याप्त प्रचलित है, 'मित्रई' का ही विकसित रूप है।

अलंकार—विशेषोक्ति।

भावार्थ—अपने तर्कों से सुदामा को प्रभावित होते देखकर स्त्री का उत्साह बहुत बढ़ गया। उसने अब एक तर्क द्वारा यह सिद्ध करना चाहा कि यों तो दरिद्रता बड़ी अच्छी चीज है; परन्तु इसमें एक दोष यह है कि साधनाहीन होने के कारण मनुष्य पितरों के ऋण से भी मुक्त नहीं हो पाता। तुमने भी अब तक फटे-पुराने वस्त्र पहने, टूटी-फूटी झोपड़ी में दिन काटे, भीख माँगकर भोजन किया और कभी इतना धन नहीं पाया कि यज्ञ आदि करके पितरों को संतुष्ट करते। इस कर्तव्य का निर्वाह न करने के कारण ही पितर विमुख रहते हैं और मनुष्य सुखी नहीं रहता। यज्ञ आदि करने के लिए जो धन चाहिए वह तुम्हें द्वारका जाने पर अवश्य प्राप्त हो जायगा, क्योंकि तुम दुखी हो और वे दयालु हैं। जो कुछ मैं कह रही हूँ वह तुम भी ठीक मानते हो। फिर भी मेरी समझ में नही आता कि द्वारका जाने में तुम अलसाते या लजाते क्यों हो। भिक्षा माँगना तुम्हारा नित्य का काम है; एक बार द्वारका जाकर भिक्षा माँगने में कौन सी विचित्र बात हो जायगी जिसके लिए इतना सोच-विचार कर रहे हो। मित्र के नाते ही द्वारका जाकर श्रीकृष्ण से भेंट करना मेरी समझ में तो आवश्यक भी है। उनके जैसे दयालु और दानी-मानी से मित्रता होने पर भी यदि जीवन भर तुमने संकट में दिन काटे तो उनका सम्बन्ध किस दिन काम आयगा?

सुदाम—तैं तो कही नीकी सुन बात हित ही की।
यह रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए॥
चित्त के मिले तैं बित्त चाहिए परसपर,
मित्र के जौ जेंइए तौ आपहूँ जेंवाँइए॥
वे हैं महाराज, जोरि बैठत समाज-भूप,
तहाँ यहि रूप जाइ कहा सकुचाइए।

दुख-सुख के दिन तो काटे ही बनैंगे, भूलि,
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए।२०।

शब्दार्थ—हित ही की - हित करनेवाली । मित्रई—मिताई, 'मित्रता' । प्रीति सरसाइए – प्रीति बढ़ानी चाहिए । जैंइए-जेंवाइए—भोजन करना और कराना चाहिए । जोरि—बटोरकर, एकत्र कर । बाहि रूख—इस दरिद्र रूप मे । काटे ही बनैंगे– काटने ही से काम चलेगा, बिताना पड़ेगा । अलंकार - लोकोक्ति ।

भावार्थ – यज्ञ करके पितरों को संतुष्ट करनेवाला स्त्री का नया तर्क भी सुदामा को ठीक जान पड़ा, परन्तु अंतिम 'मित्रता' शब्द सुनकर उनका ध्यान लोक की मान-मर्यादा की ओर पहुँच गया । मित्रता का लौकिक आदर्श समझाते हुए वे स्त्री से कहते है कि तूने सब बाते तो ठीक बतलायी, लेकिन मित्रता के लौकिक पक्ष की ओर ध्यान नही दिया । आदर्श मित्रता तो यह है कि आपस में नित्यप्रति प्रीति बढानी चाहिए ; मित्र के मन को समझकर उससे अपना मन मिलाना चाहिए । यदि एक बार उसके यहाँ भोजन करे तो दूसरी बार अपने यहाँ भोजन कराना चाहिए । सब बातें तभी निभ सकती है, जब दोनों मित्रों की स्थिति और पद एक सा हो, परन्तु श्रीकृष्ण मे और मुझमें तो महान् अंतर है । वे महाराज है, और मैं निर्धन हूं, बडे-बड़े राजाओ का समाज उनके पास जुड़ता है । वहाँ मुझ दीन ब्राह्मण का जाना कैसे अच्छा लग सकता है ? इस कारण मेरी सम्मति में सुख और दुख के दिन अकेले काट लेना ही उचित है; सुख के दिनों में तो मित्र से भले ही मिल आवे, परन्तु दुख पड़ने पर सहायता की इच्छा से मित्र के द्वार पर कभी नहीं जाना चाहिए ।

स्त्री—बिप्र के भगत हरि, बिदित जगतबन्धु,
लेत सबही की सुधि ऐस महादानी हैं ।
पढ़े एक चटसार कही तुम कैयो बार,
लोचन अपार, वे तुम्हे न पहिचानिहैं ?

एक दीनबन्धु, कृपासिंधु, फेरि गुरुबन्धु,
तुम सम कौन दीन जाकौ जिय जानिहैं ?
नाम लेत चौगुनो, गए तें द्वार सौगुनी सो,
देखत सहस गुनी प्रीति प्रभु मानिहैं ॥२१॥

शब्दार्थ - बिदित—(विदित) प्रसिद्ध । चटसार—पाठशाला । कैयो बार— कितनी ही बार । लोचन अपार— दिव्य दृष्टि वाले, सारा संसार जिनकी आँखों में है—जो सब कुछ जानते, सब कुछ देखते हैं । सहसगुनी (सहस्र -गुण) हजारगुनी । अलंकार— समुच्चय, परिकर और सार ।

भावार्थ—श्रीकृष्ण से अपनी मित्रता को सुदामा ने ससार के साधारण मित्रों की दृष्टि से देखा । स्त्री उनके मन के इस भाव को बदलना चाहती है । साधारण मित्र से तो विपत्ति पड़ने पर थोडी-बहुत सहायता भले ही मिल जाय, जन्म भर की दरिद्रता का नाश थोड़े ही हो सकता है ! वह स्वयं श्रीकृष्ण को परब्रह्म समझती है और यही भाव सुदामा के मन में भी बैठा देना चाहती है । अतएव वह कहती है—श्रीकृष्ण को तुम साधारण व्यक्ति मत समझो। ये उन्ही परब्रह्म का अवतार हैं, जो ब्राह्मणों के भक्त हैं, संसार के सहायक 'बंधु' है, और दीन-दुखियों की सुधि लेनेवाले महादानी है । संसार के प्रत्येक प्राणी की सहायता करना इनका स्वभाव है ; फिर तुमसे इनका परिचय भी है। एक नहीं, कई बार तुम कह चुके हो कि वे तुम्हारे साथ एक ही पाठशाला में पढ़े है । कहीं ऐसा भी हो सकता है कि अपार नेत्रवाले ये श्रीकृष्ण भला तुम्हें न पहचानें ? मैं तो यहाँ तक कहती हूँ कि तुम दीन हो, वे दीनबंधु हैं; तुम दुखी हो, वे कृपालु हैं, और तुम्हारे गुरुभाई भी होते हैं—इन तीन तीन संबंधों के कारण तुम्हारा नाम सुनते ही उनकी प्रीति चौगुनी, द्वार पहुँचने पर सौगुनी और तुम्हें देख लेने पर हजारगुनी बढ़ जायगी ।

सुदामा—

प्रीति में चूक न है उनके हरि मों मिलिहैं उठि कंठ लगायकै।
द्वार गए कछु दैहैं पै दैहैं, वे द्वारिकानाथ जू हैं सब लायकै॥
या बिधि बीति गये पन द्वै अब तो पहुँचौ बिरधापन आयकै।
जीवन केतौ है जाके लिए हरि सों अब होंहुँ कनावड़ो जायके॥२२॥

शब्दार्थ—चूक—भूल, कमी। मों—मुझसे। पै दैहैं—अवश्य देंगे। लायकै—लायक, योग्य। या विधि—इस तरह। पन द्वै—दो पन आधी अवस्था। बिरधापन—बुढ़ापा। केतौ—कितना। होहू कनावड़ो—आभारी, उपकृत्य—कृतज्ञ। अलंकार—आत्म-तुष्टि-प्रमाण।

भावार्थ—स्त्री के ऊपर लिखे तर्क से सुदामा को कुछ कुछ विश्वास होने लगा कि जो कुछ वह कहती है, ठीक है। उसने स्वीकार कर लिया कि श्रीकृष्ण वास्तव में बड़े प्रेमी हैं और यदि मैं उनके दर्शन करने जाऊँगा तो मुझे देखते ही उठकर गले से लगा लेंगे। साथ साथ उसने कहा—मुझे इस बात का भी पूरा विश्वास है कि वहाँ पहुँचने पर मेरी दीन दशा देखकर वे मुझे कुछ धन-संपत्ति आदि भी अवश्य ही देंगे क्योंकि वे द्वारका के नाथ हैं और सब कुछ देने योग्य हैं। इन दोनों बातों को जानते हुए भी मैं वहाँ नहीं जाना चाहता, इसका केवल एक कारण है। जीवन के लंबे लंबे भाग—बाल्यावस्था और युवावस्था— मैं बिता चुका हूँ, अब सिर्फ बुढ़ापा बाकी है। बुढ़ापे के इन बचे हुए दिनों के लिए श्रीकृष्ण का अहसान लेने जाने की इच्छा नहीं होती। इसलिए मेरी समझ में जिस तरह इतने दिन काटे हैं वैसे ही यह बुढ़ापा भी गरीबी के कष्ट सहते-सहते काट लेना अच्छा है, किसी का अहसान लेना अच्छा नहीं जान पड़ता।

स्त्री—

हूजै कनाउड़ौ बार हजार लौं हितू जो पै दीनदयालु सों पाइए।
तीनिहु लोक के ठाकुर हैं तिनके दरबार न जात लजाइए॥

मेरी कही जिय में धरिकै पिय ! भूलि न और प्रसंग चलाइए।
और के द्वार सों काज कहा पिय ! द्वारिकानाथ के द्वार सिधाइए॥२३॥

शब्दार्थ—ठाकुर—स्वामी । प्रसंग—विषय । बात—चर्चा । सिधाइए—सिधारिए, जाइए ।

भावार्थ—पति पर अपनी बात का प्रभाव पड़ता देख स्त्री को बहुत संतोष हुआ । किसी का 'अहसान न लेने की' जो बात सुदामा ने कही, उसके उत्तर में उसने कहा—मैं स्वयं किसी का एहसान लेने के पक्ष में नही हूँ । यदि वह लौकिक व्यक्ति हो तब उसका एहसान लेना कभी उचित नहीं है । परंतु यहाँ तो मैं श्रीकृष्ण की सहायता लेने की बात कह रही हूँ । संसार के स्वामी, दीनों के नाथ जैसे व्यक्ति मिल जायँ तो उनका हजार बार एहसान मानने में कोई बुराई नहीं है और न उनके दरबार में जाने में किसी तरह की लज्जा ही होनी चाहिए । इसलिए मेरी बात मान कर, इधर-उधर की सब बातें छोड़कर किसी साधारण व्यक्ति के यहाँ नहीं, श्रीकृष्ण की शरण जाइए जो तीनों लोकों के स्वामी हैं और दीनदयालु हैं ।

सुदामा—

द्वारिका जाहु जु, द्वारिका जाहु जु, आठहु जाम यहै जक तेरे ।
जौ न कहो करिए तौ बड़ो दुख, जैए कहाँ अपनी गति हेरे ॥
द्वार खरे छरिया प्रभु के तहँ भूपति जान न पावत नेरे ।
पाँच सुपारी तैं देखु बिचारिकै, भेंट को चारि न चाउर मेरे ॥२४॥

शब्दार्थ—जौ—यदि, जो । जो न कहौ करिए—यदि तेरा कहा न मानें । अपनी गति हेरे—अपनी दीन दशा देखकर । छरिया—द्वारपाल । नेरे—निकट । चाउर—चावल ।

भावार्थ—सुदामा ने मन ही मन अपनी स्त्री की सब बातें मान लीं और द्वारका जाने का निश्चय भी कर लिया, तभी उन्हें ध्यान आया कि मेरी दशा बहुत गिरी हुई है और कोई अच्छी भेंट देना तो दूर, मैं तो उन्हें पाँच सुपारी या चार चावल भी भेंट में नहीं दे सकता ।

मन ही मन अपनी इस लाचारी और निर्धनता की बात सोचकर सुदामा फिर खीझ गया; उसने झुंझला कर कहा—न जाने तू कैसी स्त्री है कि तुझे जिस बात की झक लग जाती है, बिना कुछ समझे-बूझे उसी की बकबक लगाये रहती है। अगर तेरी कोई बात न मानी जाय, तो तुझे बड़ा दुख होता है; परंतु तू यह नहीं सोचती कि अपनी दशा कितनी गिरी हुई है और इस गिरी हुई दशा में किसी तरह कोई कैसे जाय। कहाँ मैं दीन-दुखी बूढ़ा ब्राह्मण और कहाँ वे द्वारका के राजा जिनके द्वारों पर द्वारपाल हैं और बड़े-बड़े राजा तक जिनके पास नहीं पहुँच पाते। और सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ऐसे बड़े राजा के लिए जो बढ़िया भेंट चाहिए, उसकी तो बात दूर, पाँच सुपारी या चार चावल जैसी तुच्छ भेंट देने योग्य भी तो हम नहीं हैं।

यह सुनिकै तब ब्राह्मनी, गई परोसिनि पास।
पाव सेर चाउर लिए, आई सहित हुलास॥ २५॥

शब्दार्थ—पावसेर—एक पाव। हुलास—(उल्लास) उत्साह, प्रसन्नता।

भावार्थ—सुदामा की अंतिम बात सुनकर स्त्री ने किसी प्रकार का उत्तर नहीं दिया। उस चतुरा ने समझ लिया कि यदि भेंट का प्रबंध हो जाय तो ये जाने को तैयार है। इसलिए वह चुपचाप पड़ोसिन के पास गयी और पाव भर चावल लाकर बड़ी प्रसन्नता और उमंग से उससे उनके सामने रख दिये।

सिद्धि करी गनपति सुमिरि. बाँधि दुपटिया खूँट।
माँगत खात चले तहाँ, मारग बाली बूँट॥ २६॥

शब्दार्थ—सिद्धि करी—प्रस्थान किया। दुपटिया—दुपट्टा, दो पाट की सिली हुई चादर। खूँट—छोर, किनारा या पोटली। बाली बूँट—गेहूँ की बालियाँ और हरे चने।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के लिए पाव भर चावलों की भेंट दुपट्टे के कोने में बाँध कर, श्रीगणेश जी का स्मरण करके सुदामा द्वारका

के लिए चल दिये। मार्ग में अपने भोजन का काम उन्होंने कच्चा-पक्का अनाज माँग माँग कर चला लिया।

तीन दिवस चलि बिप्र के, दूखि उठे जब पाँय।
एक ठौर सोए कहूँ, घास - पयार बिछाय॥ २७॥

शब्दार्थ—दूखि उठे—दर्द करने लगे। पयार—पोरा, पुआल।

भावार्थ—तीन दिन तक चलते-चलते सुदामा के पैर दुख गये। तब वे एक स्थान पर घास-पयाल बिछाकर सो गये।

अन्तरजामी आपु हरि, जानि भगत की पीर।
सोवत लै ठाढ़ो कियो, नदी गोमती - तीर॥ २८॥

शब्दार्थ—पीर—(पीड़ा)। ठाढ़ो कियो—खड़ा कर दिया।

भावार्थ—अंतरयामी श्रीकृष्ण ने भक्त सुदामा के कष्ट की बात जान ली। (वे समझ गये कि यह दुर्बल ब्राह्मण पैदल द्वारका पहुँचने का कष्ट न सह सकेगा।) इसलिए जब वह सो रहा था तभी उन्होंने उसे उठाकर गोमती नदी के किनारे पहुँचा दिया।

प्रात गोमती दरस तें अति प्रसन्न भो चित्त।
बिप्र यहाँ असनान करि, कीन्हों नित्त-निमित्त॥ २९॥

शब्दार्थ—दरस—दर्शन। भो—हुआ। नित्त निमित्त—संध्या, तर्पण, अर्घ्य आदि नित्य-कर्म।

भावार्थ—सुदामा जब सोकर उठे और पवित्र गोमती नदी का दर्शन किया तब वे बहुत प्रसन्न हुए। बड़ी प्रसन्नता से उठकर उन्होंने स्नान-ध्यान, पूजन-पाठ आदि नित्य के काम किये।

भाल तिलक घसिकै दियो, गही सुमिरनी हाथ।
देखि दिव्य द्वारावती, भयौ अनाथ-सनाथ॥ ३०॥

शब्दार्थ—सुमरनी—जाप माला जिससे मंत्रों की संख्या गिनने का काम लिया जाता है; दिव्य—अति सुन्दर, विस्मय कारक; द्वारावती—द्वारकापुरी।

भावार्थ—सुदामा ने माथे पर तिलक लगाया, हाथ में माला

Graduate Library of Commerce

ली और द्वारावती के दर्शन करके वह अनाथ अपने को सनाथ समझने लगा।

दीठि चकाचौंधि गई देखत सुबर्नमई,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं!
पूछे बिन कोऊ कहूँ काहू सों न करै बात,
देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं।
देखत सुदामा, धाय पुरजन गहे पाँय,
कृपा करि कहौ बिप्र कहाँ कीन्हों गौन हैं।
'धीरज अधीर के, हरन पर-पीर के,
बताओ बल बीर के भवन यहाँ कौन हैं'? ॥३१॥

शब्दार्थ—दीठि (दृष्टि) नजर; सुबर्नमई (स्वर्णमयी) सोने की बनी हुई; सरस—बढ़कर, सुन्दर। भौन (भवन) गृह; साधि साधि मौन—मौन की साधना किए; धाय—दौड़कर: पुरजन—नगर निवासी; कहाँ कीन्हो गौन है—कहाँ जा रहे हो: धीरज अधीर के—दुखी को धीरज देनेवाले; पर पीर—दूसरे का दुख; बलवीर—कृष्ण; अलंकार—पूर्णोपमा।

भावार्थ—द्वारका पहुँच कर सुदामा की दृष्टि वहाँ के एक से एक सुंदर महलों पर गयी जो सोने के बने हुए थे। वहाँ के व्यक्ति पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान में ऐसे चुपचाप लगे हुए थे और कोई किसी से बात नही करता था, जैसे देवता मौन साध कर बैठे हों। सुदामा को देखकर नगर वासियों ने दौड़कर उनके पैर छुए और पूछा—कृपा करके बताइए, आप कहाँ जाना चाहते हैं। सुदामा ने उत्तर दिया—संसार के दुखों और कष्टों से दुखी होकर जिनका धीरज खो चुका है उन अधीरों को धीरज देने वाले और जो दीन-दुखी हैं, उनकी पीड़ा और कष्ट दूर करनेवाले बलराम के भाई श्री कृष्ण के महल कहाँ हैं?

दीन जानि काहू पुरुष, कर गहि लीन्हों आय।
दीननि द्वार खरो कियो दीनद्याल के जाय ॥३२॥

शब्दार्थ—काहू—किसी ने; कर गहि लीन्हों आय—आकर हाथ पकड़ लिया; दीनद्याल—दीनदयालु।

भावार्थ—एक दयालु व्यक्ति सुदामा को दीन-दुखी जान कर उनके पास आया और उनका हाथ पकड़ कर उसने उन्हें श्री कृष्ण के महलों के द्वार पर जाकर खड़ा कर दिया।

द्वारपाल द्विज जानि कै, कीन्हों दण्ड - प्रनाम।
'बिप्र कृपा करि भाषिए, सकुल आपनो नाम' ॥३३॥

शब्दार्थ—दण्ड प्रणाम (दण्डवत्) अभिवादन, साष्टांग प्रणाम; भाषिए—कहिए; सकुल—कुल सहित।

भावार्थ—द्वारपाल ने सुदामा को ब्राह्मण जानकर हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और कहा—हे ब्राह्मण, कृपा करके अपना नाम और परिचय दीजिए। (जिससे मैं आपके शुभागमन की सूचना श्री कृष्ण तक पहुँचा दूँ।

सुदामा—नाम सुदामा, कृस्न हम, पढ़े एकई साथ।
कुल पांड़े ब्रजराय सुनि, सकल जानिहैं गाथ ॥३४॥

शब्दार्थ—ब्रजराज—ब्रज के राजा, कृष्ण; गाथ—गाथा, वृत्तान्त, समाचार।

भावार्थ—सुदामा ने द्वारपाल का प्रश्न सुन कर उत्तर दिया—हमारा नाम सुदामा है, कुल पाँड़े है, ब्रजराज का मैं गुरुभाई हूँ। इतना ही कह देने से श्री कृष्ण सारी बात समझ जायेंगे।

द्वारपाल चलि तहँ गयो, कृस्न जहाँ जदुराय।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयो, बोल्यो सीस नवाय ॥३५॥

शब्दार्थ—चलि तहं गयो—वहाँ चला गया।

भावार्थ—द्वारपाल ने श्री कृष्ण के पास जाकर, हाथ जोड़कर और शीश नवाकर सुदामा का परिचय देते हुए कहा।

द्वारपाल—

सीस पगा न झगा तन में प्रभु ! जाने को आहि, बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु, पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥ ३६॥

शब्दार्थ—पगा—साफा, पगड़ी ; झगा—अँगरखा, कुर्त्ता ; जाने को आहि—न जाने कौन है ; बसै केहि ग्रामा—न जाने किस गाँव में रहता है। लटी दुपटी—पुराना फटा हुआ दुपट्टा। उपानह—जूता। सामा—सामग्री। पायँ उपानह की नहिं सामा—पैरों में जूते भी नहीं हैं। रह्यो चकि—विस्मय से चकित हो रहा है, हक्का बक्का हो रहा है। बसुधा (बसुधा) भूमि, स्थान, भवन। अभिरामा (अभिराम) सुन्दर। यहाँ का वैभव और ठाट-बाट देखकर चकित हो रहा है। धाम—महल, मकान। अलंकार—स्वभावोक्ति।

भावार्थ—द्वार पाल ने कहा—हे प्रभु, द्वार पर एक बहुत दुबला-पतला ब्राह्मण खड़ा है। उसके सर पर न पगड़ी है, न तन पर कुर्त्ता है, एक फटी-पुरानी धोती पहने है, पैर में खड़ाऊँ तक भी नहीं है, न जाने कौन है और किस गाँव का रहने वाला है। बड़ी देर से चकित होकर वह आपके महल ताक रहा है, आपके महलों का पता पूछ रहा है और अपना नाम 'सुदामा' बताता है।

बोल्यौ द्वारपालक 'सुदामा नाम पाँड़े' सुनि,
छाँड़े राज-काज ऐसे जी की गति जानै को ?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि, धाय गहे पाँय,
भेंटे लपटाय करि, ऐसे दुख सानै को ?
नैन दोऊ जल भरि, पूछत कुसल हरि,
बिप्र बोल्यो 'बिपदा मैं मोहिं पहिचानै को ?
जैसी तुम करी तैसी करै को दया के सिंधु !
ऐसी प्रीति दीनबंधु ! दीनन सों मानै को॥३७॥

शब्दार्थ—जी की गति—हृदय की दशा। को—कौन। धाय—दौड़कर। लपटाय—लिपटकर, गले मिलकर। भेंटे भरि····साने को—दुखी सुदामा को गले लगाकर वे उससे लिपट गये। विपदा (विपद्)। दीनन पै—दरिद्र पर, दुखी पर। ऐसी····मानै को—आशय यह कि ईश्वर के सिवा दीनों से ऐसा कौन प्रेम करता है।

भावार्थ—द्वारपाल के मुख से जैसे ही 'सुदामा' का नाम निकला, वैसे ही श्रीकृष्ण सारा राज-काज छोड़कर हड़बड़ा कर उठ बैठे। द्वारका के नाथ वे श्रीकृष्ण हाथ जोड़े हुए दौड़े और जाकर उन्होंने सुदामा के पैर पकड़ लिये। फिर उन्होंने सुदामा को गले लगा लिया। सुदामा की दीन दशा सुनकर श्रीकृष्ण की दोनों आँखों में आँसू भर आये। तब उन्होंने सुदामा से कुशल-समाचार पूछा। सुदामा उनके इस प्रेम और कृपापूर्ण व्यवहार से इतना प्रभावित हो चुका था कि उसने गद्गद् कंठ से उत्तर दिया—और तो सब दया है, परंतु मैं विपत्ति में हूँ। दुख पाने पर कोई संगी-साथी पहचानता ही कब है? तुमने मेरा आगमन सुनकर ही इतनी प्रीति और दया दिखलायी, भला दीन-दुखियों पर ऐसी कृपा तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता है?

विशेष—कवि इन पंक्तियों में श्रीकृष्ण की दीन-वत्सलता दिखाना चाहता है। इसीलिए सुदामा का नाम सुनते ही श्रीकृष्ण का दौड़ पड़ना, कभी हाथ जोड़ना, कभी पैर छूना, कभी उन्हें गले लगाना आदि देखकर वह कहता है—'जी की गति जानै को' और 'ऐसे दुख साने को।' सुदामा की भी अंतिम पंक्ति—'ऐसी प्रीति दीनन सों मानै को' कहकर इसी बात का समर्थन किया गया है कि श्रीकृष्ण ने सुदामा से मित्रता का जैसा निर्वाह किया, वह सर्वथा अलौकिक है, लोक-परलोक की गाथाओं में वैसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलता।

लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि तें देखत ही दुख मेट्यो।
सोच भयो सुरनायक के कलपद्रम के हिय माँझ खखेट्यो॥

कम्प कुबेर-हिए सरस्यो, परसे पग जात सुमेरु ससेट्यो।
रंक ते राउ भयो तबहीं, जबहीं भरि अंक रमापति भेंट्यो ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—पूरि रहे जलसों—जल से भर आए, डबडबा आए। सुरनायक—इंद्र। हिय माँझ—हृदय में। कलपद्रुम—(कल्पद्रुम) नन्दन वन का वृक्ष विशेष। खसेट्यो—खटका पैदा हुआ। कलपद्रुम के हिय माँझ खसेट्यो—कल्पद्रुम के हृदय में इस बात की आशंका पैदा हुई कि कहीं उसे नन्दन वन से उखड़कर सुदामा के साथ न जाना पड़े। कम्प कुबेर हिए सरसों—कुबेर का कलेजा काँपने लगा। परसे पग—पैर छूते ही। जात सुमेर समेट्यो—सोने का सुमेर सिकुड़ने लगा। रंक—दरिद्र। राउ—राजा। अंकभरि—अँकवार भरकर, छाती से लगाकर। रमापति—विष्णु, कृष्ण। अलंकार—चंचलातिशयोक्ति और परिकर।

भावार्थ—इस छंद में कवि ने परोक्ष रूप से संकेत किया है कि श्रीकृष्ण वास्तव में तीनों लोकों के स्वामी हैं, इंद्र कुबेर आदि उनके इशारे पर चलने वाले सेवक हैं। उनके दर्शन से सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं और उनकी कृपा से सारी संपदा प्राप्त होती है।

श्रीकृष्ण ने नेत्रों में जल भर कर जब सुदामा की ओर दूर से देखा, तभी सुदामा के सारे दुख मिट गये। जब उन्होंने सुदामा के पैर पकड़े, तब देवताओं के राजा इंद्र को भय हुआ कि कहीं मेरा ऐश्वर्य ही इसे न दे दिया जाय, सब तरह की इच्छाओं को पूरी करनेवाले कल्पवृक्ष ने सोचा कि कही मैं ही भेंट में न दे दिया जाऊँ, देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर जी घबड़ाये कि कहीं मेरा सारा कोष ही न इसे भेंट कर दिया जाय और सोने के पर्वत सुमेरु ने सोचा कि कही मैं ही दान में न दे दिया जाऊँ। (इंद्र, कल्पवृक्ष, कुबेर और सुमेरु के मन में इस प्रकार की शंकाओं के उठाने से कवि का संकेत यह है कि परमात्मा की दया के एक संकेत से ही भक्त को इन सबकी संपदा क्षणभर में प्राप्त हो जाती है।) जब श्रीकृष्ण ने सुदामा को गले लगाया, तभी वह भिखारी से राजा हो गया।

भेंटि भली बिधि बिप्र सों, कर गहि त्रिभुवनराय।
अंतःपुर को लै गए, जहाँ न दूजो जाय॥ ३६॥

शब्दार्थ—त्रिभुवन—तीनलोक—आकाश, पाताल, मर्त्यलोक। राय—राजा, स्वामी। अंतःपुर—रनिवास, रंगमहल।

भावार्थ—अच्छी तरह मिल-भेंट कर श्रीकृष्ण सुदामा को अपने रनिवास में ले गये जहाँ कभी कोई पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता था। संकेत यह कि श्रीकृष्ण ने अपने में और गुरुभाई सुदामा में कोई अंतर नहीं समझा और अपने परिचितों में उन्हें सबसे ऊँचा स्थान दिया क्योंकि उनमें कोई भी कभी अंतःपुर में नहीं पहुँच सका था।

मनि-मंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय।
पानी धर्‌यो परात में, पग धोवन को लाय॥ ४०॥

शब्दार्थ—मनि मंडित (मणि मंडित) जिसमें मणियाँ जड़ी हों। चौकी कनक—सोने की चौकी। पग धोवन को—पैर धोने के लिए।

भावार्थ—श्रीकृष्ण ने सुदामा को मणियों से जड़ी एक सोने की चौकी पर बैठाया और उनके पैर धोने के लिए एक थाल में पानी भर कर स्वयं रखा।

राज-रमनि सोरह-सहस, सब सेवकन समेत।
आठौ पटरानी भईं, चकित चितैं यह हेत॥ ४१॥

शब्दार्थ—राज-रमनि (राज-रमणी) रानी। सोरह सहस—सोलह हजार। पटरानी— प्रधानरानी, राजमहिषी। चितैं—देखकर। हेत—प्रेम।

भावार्थ—दीन-दुर्बल ब्राह्मण सुदामा का श्रीकृष्ण को इस प्रकार आदर-सत्कार करते देखकर इनकी आठों पटरानियाँ, सोलह हजार रानियाँ और सब सेवक बहुत चकित हुए।

जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत-संताप।
पाँय सुदामा बिप्र के, धोवत ते हरि आप॥ ४२॥

शब्दार्थ—जिनके चरनन—जिनके चरणों का जल संसार का

संताप दूर करता है, संसार में आवागमन के बंधन से मुक्त करता है, गंगाजल के मूल में तो वही जल है (गंगा का उद्गम विष्णु के चरणों से हुआ है) ते—वे । आप—स्वयं वही ।

भावार्थ—सुदामा के प्रति श्री कृष्ण की दया और प्रीति देखकर कवि कहता है—जिन परब्रह्म श्री कृष्ण के चरणों का जल—१. चरणामृत और २. गंगा जी—संसार के कष्टों को हर लेता है, वे स्वयं आज सुदामा विप्र के चरण धो रहे हैं ।

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोए ।
'हाय महादुख पायौ सखा ! तुम आय इतै न कितै दिन खोए ॥
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए ।
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सों पग धोए ॥४३॥

शब्दार्थ—बेहाल—बुरी दशा । बेवाई—बिवाई, पैर के तलवे फटने का रोग । कंटक-जाल—काँटों का समूह । पुनि—फिर । जोए—देखे । इतै—इहाँ । कितै—कहाँ, किधर । करुना-निधि—करुणा के समुद्र, श्री कृष्ण ।

विशेष—यह छंद बड़ा मार्मिक है । इसमें श्री कृष्ण के हृदय की असीम प्रीति और करुणा ही जैसे उनके आँसुओं के रूप में बह रही है ।

भावार्थ—इस खंडकाव्य का यह छंद बहुत लोकप्रिय है । इसमें कवि ने श्री कृष्ण की भक्तवत्सलता के साथ साथ उनकी मित्रता के अपूर्व आदर्श का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है । श्री कृष्ण ने सुदामा के पैर धोने के लिए परात भर पानी लाकर रखा । धोने के लिए जब उन्होंने सुदामा का पैर उठाया तो देखा कि बिवाइयों से सारा पैर फट रहा है और एक दो नहीं, सैकड़ों काँटे उसमें चुभे हुए है । पैरों की इस दुर्दशा से श्री कृष्ण ने सुदामा के कष्टों का अनुमान कर लिया और बहुत रोकर उन्होंने कहा—हे मित्र, तुम कहाँ इतने कष्ट भोगते रहे । इतना कहकर और सुदामा की दीन दशा देखकर श्री कृष्ण इतना रोये

कि परात का पानी छूने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी, आँखों से बही हुई जल-धारा से ही उन्होंने सुदामा के पैर धो डाले।

धोय पाँय पट-पीत सों पोंछत हैं जदुराय।
सतिभामा सों यों कही 'करौ रसोई जाय' ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—पटपीत—पीतपट, पीताम्बर। सतभामा (सत्यभामा) श्री कृष्ण की एक रानी।

भावार्थ—सुदामा के पैर धो कर श्री कृष्ण ने अपने पीताम्बर से उन्हें पोंछा और सत्यभामा नामक पटरानी से कहा—जाकर इनके लिए रसोई बनाओ।

तंदुल तिय दीन्हें हते, आगे धरियौ जाय।
देखि राज-संपति बिभव, दै नहि सकत लजाय ॥४५॥

शब्दार्थ—तन्दुल - चावल। दीन्हे हते—दिये थे। आगे धरियो—आगे रखना, भेंट देना। बिभव - वैभव ऐश्वर्य।

भावार्थ—सुदामा की स्त्री ने भेट में देने के लिए पाव भर चावल बाँध दिये थे, कहा था—इन्हे भेंट में दे देना। परन्तु श्री कृष्ण का अपार वैभव देखकर लोक-लाज और संकोच के कारण सुदामा वह भेंट देने का साहस नही कर सका।

अंतरजामी आपु हरि, जानि भगत की रीति।
सुहृद सुदामा बिप्र सों, प्रगट जनाई प्रीति ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—रीति—ढंग, पद्धति। सुहृद—मित्र। प्रगट (प्रकट) प्रत्यक्ष। जनाई—प्रकट किया।

भावार्थ—अंतर्यामी श्री कृष्ण ने भक्त सुदामा के मन का संकोच जान लिया। मित्र से अपनी अभिन्नता और परम प्रीति जताने के लिए उन्होंने प्रकट रूप से कहा।

कृष्ण—

कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत।
चाँपि पोटरी काँख में, रहे कहो केहि हेत ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—काहे न देत—क्यों नहीं देते ? चाँपि रहे—दबा रहे हो, छिपाये हो। काँख—बगल। हेत—हेतु, कारण।

भावार्थ—श्री कृष्ण ने सुदामा से कहा—भाभी ने हमारे लिए कुछ भेट दी होगी, वह तुम हमे क्यों नहीं देते; भेट की बँधी हुई पोटली बगल में किस लिए दबा रहे हो ?

आगे चना गुरु-मातु दए, ते लए तुम चाबि, हमैं नहिं दीन्हें।
स्याम कह्यो मुस्काय सुदामा सों चोरी की बानि में हौ जू प्रबीने॥
पोटरी काँख में चाँपि रहे तुम, खोलत नाहि सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौं न तजी तुम, तैसेई भाभी के तंदुल कीने॥४८॥

शब्दार्थ—आगे—पहले। 'चना गुरु मात.....नहिं दीन्हे'—कथा है—सन्दीपन गुरु के पास पढ़ने के दिनों में गुरु की स्त्री ने सुदामा के साथ कृष्ण को लकड़ी लाने के लिए जंगल भेजा। सुदामा को उन्होंने कुछ चने देकर कहा कि भूख लगने पर तुम और कृष्ण, दोनों चबा लेना। संयोगवश वन मे आँधी और पानी का सामना करना पड़ा और कृष्ण-सुदामा भटक कर एक दूसरे से अलग हो गए। भूख लगने पर सुदामा ने चने चबा लिए, लेकिन कृष्ण को यह न बताया कि गुरु-पत्नी ने चने दिये थे। लौटने पर यह बात कृष्ण को मालूम हुई। यहाँ कृष्ण ने उसी घटना की ओर संकेत कर व्यंग्य किया है। बानि—आदत। प्रबीने (प्रवीण) चतुर, दक्ष। सुधा-रस-भीने—जिनमें अमृत भरा हो। मधुर-मीठे। पाछिली—पिछली। अजौं—आज भी। भाभी के तन्दुल—भाभी ने मेरे लिए जो चावल दिए थे। कीने—किया, अर्थात् छिपाया।

भावार्थ—सुदामा का संकोच दूर करने और उपस्थित सज्जनों को सुदामा से अपना संबंध बताने के लिए श्रीकृष्ण ने एक पिछला प्रसग छेड़ा; हँसकर कहा—भाभी की दी हुई भेंट तुम छिपा रहे हो, यह तुम्हारी नयी आदत थोड़े ही है। जब हम तुम साथ-साथ पढ़ते थे और गुरु-माता ने हमारे और तुम्हारे खाने के लिए चने तुम्हें दिये थे,

तब भी तुमने अकेले ही वे सब चबा लिए थे, हमें खाने को नहीं दिये थे। चोरी करने में तुम इतने चतुर हो कि तुमने वह आदत अभी तक नहीं छोड़ी। आज तुम हमारी भाभी के दिये हुए, सुधा रस से सने, चावलों की पोटली बगल में छिपा कर पिछली बात क्यों दोहरा रहे हो ?

विशेष—कहा जाता है कि एक बार की उस चोरी के कारण ही सुदामा को जीवन भर दरिद्रता का कष्ट भोगना पड़ा।

खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि कै परे, बिखरि गए तेहि ठौर ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—जीरन--(जीर्ण) पुराना। तेहि ठौर —उसी जगह। बिखर गए – फैल गए, छितरा गए।

भावार्थ—श्री कृष्ण द्वारा पिछली चोरी का भेद खोला जाता देख सुदामा ने चावलों की पोटली निकाली और काँपते हुए हाथों से बहुत सकुचाते हुए उसे खोलना चाहा। परंतु कपड़ा इतना पुराना था कि उसकी गाँठ ही नहीं खुली, बीच से ही वह फट गया और सब चावल गिरकर बिखर गये।

एक मुठी हरि भरि तबै, लीन्हीं मुख में डारि।
चबत चबाउ करन लगे, चतुरानन त्रिपुरारि ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—चबत – चबाने के साथ साथ ही। चबाउ--कानाफूसी करना। चतुरानन—चार मुख वाले, ब्रह्मा। त्रिपुरारि--त्रिपुर को मारने वाले शंकर। अलंकार --चञ्चलातिशयोक्ति।

भावार्थ--बिखरे हुए चावलों को जल्दी से समेट कर श्रीकृष्ण ने एक मुट्ठी भरी और बड़े चाव से मुख में डालकर खाने लगे। परब्रह्म श्री कृष्ण को इस प्रकार ब्राह्मण के चावल चबाते देखकर ब्रह्मा और शिव आपस में तरह-तरह की बातें करने लगे।

काँपि उठी कमला मन सोचत, 'मों सों कहा हरि को मन औंको' ?
रिद्धि कँपी, सब सिद्धि कँपी, नव निद्धि कँपी, बम्हना यह धौं को ?

सोच भयो सुरनायक के, जब दूसरि बार लियौ भरि झौंको।
मेरु डरयो बकसैं जनि मोहिं, कुबेर चबावत चाउर चौंको ॥५१॥

शब्दार्थ—कमला—लक्ष्मी। मोसें—मुझसे। कहा—क्या। मन औंको—मन उकता गया है, फिर गया है, ऊब गया है। रिद्धि—ऋद्धि। सिद्धि—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व, वशित्व, ये आठ सिद्धियाँ हैं। निद्धि—(निधि) पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व, ये नौ निद्धियाँ हैं। बम्हना—ब्राह्मण। धौं को—न जाने कौन है? व्रजभाषा और अवधी का यह एक प्रश्नवाचक मुहावरा है। झौंको—फंका। बकसैं जनि—कहीं दान न कर दें। कुबेर—देवता विशेष, उत्तर दिशा के स्वामी, धन के देवता, देवताओं के कोषाध्यक्ष।

भावार्थ—श्री कृष्ण को दीन ब्राह्मण के चावल की पहली मुट्ठी चबाते देखकर लक्ष्मी जी, ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और निधियाँ काँपने लगीं। सबने समझ लिया कि ब्राह्मण को इन चावलों के बदले मे संसार की बहुत सी संपति श्री कृष्ण देंगे। अतएव सबको यह डर हुआ कि दान में कहीं हमीं न इस ब्राह्मण को सौंप दी जायँ, न जाने यह ब्राह्मण कौन है?

श्री कृष्ण ने जब दूसरी मुट्ठी भरकर खायी, तब इंद्र, सुमेरु और कुबेर चौंक पड़े और इन्हें भी डर होने लगा कि कहीं हमीं न इस ब्राह्मण को सौंप दिये जायँ।

हूल हियरा में, सब कानन परी है टेर,
भेंटत सुदामा स्याम चाबि न अघात हौं।'
कहैं नरोत्तम रिद्धि-सिद्धिन में सौर भयौ,
ठाढ़ी थरहरैं और सोचे कमला तहीं॥
नाकलोक, नागलोग, ओक-ओक थोक-थोक,
ठाढ़े थरहरे मुख सूखे सब गातहीं।

हाल्यौ परयो थोकन मैं, लालो परयो लोकन में,
चाल्यो परयो चक्कन में चाउर चबात हीं ॥५२॥

शब्दार्थ—हूल—(हौल) घबराहट। हियरा में—हृदय में। कानन—कानों में। टेर—पुकार, बुलाना। न अघात ही—अघाते नहीं हैं, तृप्त नहीं होते। थरहरैं—काँपती हैं। तहीं—वहीं, उसी जगह। नाक लोक—स्वर्गलोक। नागलोक—सर्पलोक, पाताल लोक। ओक-ओक—घर-घर, सब कहीं। थोक-थोक—समूह के समूह, टोली की टोली। हालो परो - हल्ला मच गया। थाकन में—झुंड और समूह में। लालो परो -चिन्ता फैल गई। चालो परो – कम्पन होने लगी। चक्कन में – चक्रों में, भूमण्डल तथा अन्य ग्रहों में। इसका दूसरा अर्थ 'काल चक्र का विचलित हो उठना' भी है। यही अधिक सार्थक और स्वाभाविक है। जन्म के दरिद्र सुदामा का आज भाग्य पलट रहा है; वह रंक से राजा होने जा रहा है। इसी से कालचक्र भी चलायमान हो गया है। अलंकार —चञ्चलातिशयोक्ति, वीप्सा, पदार्थावृत्ति दीपक।

भावार्थ—श्री कृष्ण ने सुदामा के लाये हुए चावल चबाना शुरू किया। यह एक अद्भुद् घटना थी। तीनों लोकों के स्वामी श्री कृष्ण दीन ब्राह्मण के चावल इतनी रुचि से चबायँगे, इसकी कल्पना कदाचित किसी ने भी न की होगी। मित्रता और भक्तवत्सलता का यह अद्भुत-अपूर्व दृश्य देखकर सारा रनिवास चकित रह गया। 'श्री कृष्ण ने सुदामा-जैसे दीन का बहुत आदर-सत्कार किया और अब उसके चावल ऐसी रुचि से चबा रहे हैं कि अघाते ही नहीं, यह बात जब औरों ने सुनी तो सबके हृदय में एक प्रकार की घबराहट सी हुई। श्री कृष्ण की सेवा में लगी हुई ऋद्धियों-सिद्धियों में कोलाहल-सा मचने लगा और वहीं खड़ी खड़ी रुकिमणी जी काँपने लगीं। स्वर्ग और पाताल के घर-घर में और नरनारियों के एकत्र समाजों या समूहों में इस संवाद से सब के मुख सूख गये और सब काँपने लगे। चावल के चबाते

ही लोगों के झुंडों में कोलाहल होने लगा, चारों ओर चिंता की एक लहर सी फैल गयी और भूमंडल तथा अन्य ग्रह भी काँपने लगे। अथवा श्री कृष्ण की यह लीला देखकर कालचक्र भी विचलित हो उठा, क्योंकि जिस सुदामा के भाग्य में इतनी दरिद्रता लिखी थी, वह दो मुट्ठी चावल खिलाकर आज अपार संपत्ति का स्वामी होने जा रहा है। अतएव अपनी परवशता पर काल का विचलित हो उठना स्वाभाविक ही है।

भौन भरे पकवान मिठाइन लोग कहैं निधि हैं सुषमा के।
साँझ सबेरे कितै अभिलाषत दाख न चाखत सिंधु छमा के॥
बाम्हन एक कोऊ दुखिया सेर-पावक चाउर लायौ समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिए तेहि बैठि चबावत कन्त रमा के॥५३॥

शब्दार्थ—पकवान (पक्वान) पूरी, कचौड़ी इत्यादि। निधि—कोष, खजाना। सुषमा—सुन्दरता। अभिलाषत—चाहते हैं, कामना करते हैं। दाख—(द्राक्षा) मुनक्का, छुहारा, दूसरे सूखे फल। न चाखत—चखते तक नहीं। सिंधु छमा के—क्षमा के समुद्र श्री कृष्ण। सेर पावक—लगभग सवा सेर। 'क' प्रत्यय लगने से शब्द 'लगभग' अर्थ देता है। कत रमा के—लक्ष्मी के पति, विष्णु, श्री कृष्ण। अलंकार—विषम।

भावार्थ—श्री कृष्ण के भवन तरह-तरह की मिठाइयों, पकवानों, फलों और मेवों से भरे पड़े हैं। ये सब व्यंजन देखने में बहुत सुदर और स्वाद में भी बहुत बढ़िया हैं। माता-पिता बड़े दुलार से प्रातः और सायंकाल उनसे भोजन करने का आग्रह करते है, परंतु लक्ष्मी के पति श्री कृष्ण इनको चख भर लेते हैं, रुचि से मेवा-मिठाई भी नहीं खाते। परंतु उनकी प्रीति का यह व्यवहार कितना अद्भुत है कि सामा जैसे मोटे चावल जब एक ब्राह्मण भेंट-रूप में लाया है, तो उसे सहर्ष अपनाकर बड़ी रुचि से बैठे चबा रहे हैं।

विशेष—शबरी के घर रामचंद्र का जूठे बेर खाना, दुर्योधन के अभिमान भरे व्यंजनों का त्याग करके श्री कृष्ण का विदुर के घर

साधारण शाक-पात खाना आदि कथाएँ भी इसी प्रसंग की हैं जो साधनहीन भक्तों के हृदय का दृढ़ अवलंब हैं।

मुठी तीसरी भरत ही, रुकुमिनि पकरी बाँह।
'ऐसी तुम्हें कहा भई, सम्पति की अनचाह ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ -रुकुमिनि—(रुक्मिणी) कृष्ण की पटरानी। अनचाह—अनिच्छा, उदासीनता।

भावार्थ—दो मुट्ठी चावल चबाने के बाद श्री कृष्ण ने जब तीसरी मुट्ठी भरी, तब रुक्मिणी जी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा -महाराज, आज आप धन-संपत्ति की ओर से क्या बिल्कुल उदासीन हो गये है ?

कही रुकुमिनि कान में, 'यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामहिं आप सों, होत सुदामा आप' ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—यह धौं कौन मिलाप—यह कैसा मिलन है, कैसी मित्रता है।

भावार्थ—श्री कृष्ण का हाथ रोककर रुक्मिणी जी ने कान में कहा —भला, यह भी मिलने-भेंटने का कोई ढंग है जो सुदामा को अपने समान तीनों लोक की संपदा सौंपे दे रहे हो और स्वयं सुदामा के समान निर्धन होना चाहते हो।

हाथ गह्यो प्रभु को कमला, कहै 'नाथ कहाँ तुमने चित धारी।
तंदुल खाय मुठी दुई, दीन कियो दुइ लोक बिहारी॥
खाइ मुठी तिसरी अब नाथ ! कहाँ निज बास की आस बिचारी।
रंकहिं आपु समान कियो तुम चाहत आपुहिं होन भिखारी' ॥५५ अ

शब्दार्थ—कमला—लक्ष्मी। कहा चितधारी—मन में क्या सोचा है। दुई लोक बिहारी—दो लोकों के स्वामी। बास—रहने का स्थान। आस—आशा।

भावार्थ—श्री कृष्ण का हाथ पकड़ कर कमला ने कहा—महाराज, समझ में नहीं आता कि आपने मन में क्या निश्चय किया है ? दो

मुट्ठी चावल आप खा चुके; इस तरह आपने सुदामा को दो लोकों की संपदा दे दी। अब आप तीसरी मुट्ठी खाकर तीसरा लोक भी इन्हें सौंप देना चाहते हैं, तो कृपा करके यह तो बताइए कि आपने कहाँ रहने का इरादा किया है। इस भिखारी को आपने अपने समान धनी बना दिया, इतना तो खैर ठीक है; अब आपने क्या स्वयं भिखारी होने की ही मन में ठान ली है ?

कृष्ण—

क्यों रस में बिष बाम ! कियो अब और न खान दियौ इक फंका ?
बिप्रहि लोक तृतीय के देत करी तुम क्यों अपने मन संका ?
भामिनि मोहिं जेंवाइ भली बिधि. कौन रह्यौ जग मैं नर रंका ?
लोक कहैं हरि-मित्र दुखी हमसों न सह्यो यह जात कलंका ॥५५आ

शब्दार्थ—रस—आनंद। बाम—स्त्री। भामिनि—स्त्री।

भावार्थ—रुक्मिणी ने चावल खाने में और सुदामा को तीसरे लोक की संपदा देने में बाधा डाली, श्री कृष्ण इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—हे कमला, मेरे चावल खाने में बाधा डालकर तूने सारा स्वाद फीका कर दिया जो एक मुट्ठी चावल तूने मुझे और खाने दिये। समझ में नहीं आता कि इस ब्राह्मण को तीसरे लोक की संपत्ति दिये जाते देखकर तेरे मन में शंका क्यों हुई। भला तू ही बता कि संसार में कोई व्यक्ति मुझे भोजन से तृप्त करके कभी निर्धन रहा है ? यह हमारा परम मित्र है और निर्धन है। सब लोग कहते हैं —श्री कृष्ण का मित्र इतना निर्धन है ; हमसे यह कलंक नहीं सहा जाता।

रुक्मिणी—

भार्गव ह्वै सब जीति धरा दइ बिप्रन कौं अति ही सुख मानो।
बिप्रन काढ़ि दियो तुमको पुनि, ता दिन को बिसरो खिसियानो ॥
सिंधु हटाय करी तुम ठौर द्विजन्म-सुभाव भली बिधि जानो।
सो तुम देत द्विजै सब लोक कियो तुमनै अब कौन ठिकानो ५५इ

शब्दार्थ——भार्गव—(भृगुवंशी) परशुराम। 'भार्गवहूँ तुम..... धरा-दई'—परशुरामावतार में विष्णु ने पृथ्वी जीत कर ब्राह्मणों को दान कर दी; कथा है, परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों को मारकर पृथ्वी को जीत लिया और उसे कश्यप को दान कर दिया। संकल्प ले चुकने पर कश्यप ने कहा--आपने तो अब समस्त पृथ्वी दान कर दी है। अब इस पृथ्वी पर रहना पाप कर्म होगा। परशुराम ने समुद्र के भीतर से अपने निवास के लिए पृथ्वी निकाली; इसी कथा की ओर संकेत है। काढ़ना—निर्वासित करना; खिसियाना--लज्जित होने पर क्रोध करना; द्विजन्म—ब्राह्मण, यज्ञोपवीत के बाद दूसरा जन्म माना जाता है। अब कौन ठिकानो—रहने का अब क्या प्रबन्ध किया है। आशय यह है कि पहले तो तुमने केवल पृथ्वी दान की थी, तब तुम्हे समुद्र की भूमि पर रहने को मिल गया था; ब्राह्मणों का स्वभाव तो तुम जानते ही हो; इस ब्राह्मण को तुम तीनों लोक दिये दे रहे हो; अब यदि इसने भी अपनी जाति के स्वभाव के अनुसार तुमसे निकल जाने को कहा तो तुम कहाँ रहोगे।

भावार्थ--रुक्मिणी ने श्री कृष्ण की बात का उत्तर देते हुए कहा - इस ब्राह्मण को दान देने न देने की बात मैं नहीं कह रही हूँ। मुझे तो सिर्फ इतना तुम्हें याद दिलाना है कि परशुराम के रूप में अवतार लेकर जब तुमने क्षत्रियों से पृथ्वी छीन कर ब्राह्मणों को दी थी, तब उन्होंने तुम्हें निकाल बाहर किया था और कहा था कि इस पृथ्वी के बाहर जाकर बसो। क्या वह खिसियाने वाली बात भूल गये जब तुम्हें अपने बसने के लिए समुद्र से नयी पृथ्वी निकालनी पड़ी थी? मैं इन ब्राह्मणों का स्वभाव अच्छी तरह जानती हूँ। इसी से मैं जानना चाहती हूँ कि इस बार जब तुम तीनों लोक इन्हें दान कर दोगे (और इन्होंने कहीं पिछली बात दोहरायी) तो अपने रहने का अब कौन ठिकाना तुमने सोचा है।

कृष्ण—

भामिनी ! देहुँ द्विजै सब लोक तजौ हठ मेरे यहै मन भाई।
लोक चतुर्दस की सुख-संपति लागति बिप्र बिना दुखदायी॥
जाय बसौं उनके गृह मैं करिहौं द्विज-दम्प त की सेवकाई।
तो मन माँहिं रुचै-न-रुचै सो रुचै हमकौ वह ठौर सदाई॥ ५५ ई॥

शब्दार्थ लोक चतुर्दस—(चतुदर्शलोक) चौदह भुवन; दम्पत्ति—पति-पत्नी; रुचै—अच्छी लगे या न अच्छी लगे।

भावार्थ—श्री कृष्ण ने उत्तर दिया अपना हठ तुम छोड़ दो। मैं ब्राह्मणों का भक्त हूँ और मैंने मन में सोच लिया है कि तीनों लोकों की धन-संपत्ति इनको दान कर दी जाय। इनके बिना मुझे चौदहों लोक की धन-संपत्ति अच्छी नही लगती। तुमने जो पिछली कथा की याद दिलायी, सो मैं वह बात भूला नहीं हूँ। तुम्हें पसंद हो या न हो, पर मुझे तो ब्राह्मणों का सत्संग बहुत प्रिय है और यदि ब्राह्मण भी पिछली बात दोहरायेगा तो मैं जाकर इसी के घर बस जाऊँगा और ब्राह्मण-दंपत्ति की सेवा करके ही अपना समय बिता दूंगा।

रुक्मिणी—

नेकु न कानि करी द्विज पै नृग-से नृप को नरकी करि डारो।
साप दियो पुनि संकर को अब लौं मख तें सिव-भाग बिसारो।
बिप्रन फेरि बिजै-जय को तुम देखत घोर कुजोनि मैं डारो।
सो तुम जानि सबै गुन-दोष करौ फिरहू द्विज को पतियारो॥५५उ

शब्दार्थ—नेकु थोड़ा-सा। कानि—सम्मान, मर्यादा। द्विज पै—ब्राह्मण मे। नरकी—नरकवासी। राजानृग—इक्ष्वाकु-वंश मे राजा नृग बड़े दानी थे। अग्निहोत्र के बाद ये प्रतिदिन करोड़ गाएँ दान करते थे। संयोग से एक दिन एक संकल्पित गौ असंकल्पित गौओं में मिल गयी और दूसरे ब्राह्मण को संकल्प कर दी गयी। जिन दो ब्राह्मणों को संकल्प मिला था, वे आपस में लड़ने लगे। राजा के पास न्याय के लिए दोनों ब्राह्मण आए। सब घटना जानकर

राजा विचार करने लगे और उनकी गर्दन विचार की अवस्था में ही कई बार हिल गयी। इस पर एक ब्राह्मण ने शाप दे दिया—तुम गिरगिट की तरह गर्दन क्या हिला रहे हो ; साफ क्यों नहीं कहते। तुम गिरगिट हो जाओ। इसी घटना को लेकर सूरदास ने कहा है 'कोटि गऊ राजा नृग दीनों सो भव कूप परो'। राजा नृग बहुत काल तक गिरगिट होकर कुएँ में पड़े रहे। श्रीकृष्ण के दर्शन से उनका उद्धार हुआ। संकर—(शंकर) महादेव। मख—यज्ञ। सिव भाग बिसारो—ब्राह्मण-शाप से ही शिव को यज्ञ में भाग नहीं मिलता। कथा है, प्रजापति होने पर दक्ष को ब्रह्म-सभा में जाना पड़ा। सभी देवता वहाँ उपस्थित थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश को छोड़ कर सभी देवता उनके अभिवादन के लिए उठ खड़े हुए। ब्रह्मा को वृद्ध और विष्णु को आराध्य समझकर उनके न उठने का तो दक्ष ने बुरा नहीं माना, लेकिन शंकर की, जो उनके दामाद थे, अवज्ञा उनके लिए असह्य हो उठी और उन्होंने शंकर को शाप दिया कि अबसे तुम यज्ञ-भाग के अधिकारी नहीं रहे। तभी से शंकर को यज्ञ-भाग नहीं मिलता। दक्ष ब्राह्मण थे। इसलिए यहाँ इस कथा की ओर सकेत है। तुम देखत—तुम्हारे सामने हो। बिजै-जय—विजय, जय—ये विष्णु के द्वारपाल है। सनकादि ऋषियों को इन द्वारपालों ने विष्णु के पास जाने से रोका था। इस पर उन्होंने शाप देकर इन्हे दैत्य बना दिया। तीन जन्म तक इन्हें दैत्य रहना पड़ा। पतियारो—विश्वास।

विशेष—५४ अ, आ, इ, ई, उ—ये पाँच छंद इधर की प्रतियों में मिलते है। भाषा की दृष्टि से यद्यपि इन्हें सहसा नरोत्तम के अतिरिक्त किसी अन्य कवि का रचा हुआ नही कहा जा सकता, पर शैली और स्वाभाविकता की दृष्टि से यही ठीक जान पड़ता है कि ये छंद नरोत्तम के नहीं हैं। सुदामा के सामने ही कृष्ण का अपनी पत्नी से इस प्रकार का वार्त्तालाप—यदि कान में बात [illegible] तब तो और भी—

Post Graduate Library

अनुचित है। फिर भी विशेष प्रचलित होने के कारण हमने इन्हें इस संस्करण में रख लिया है।

भावार्थ—श्रीकृष्ण की बात सुनकर रुक्मिणी ने फिर कहा—महाराज, आपकी ये बातें सुनकर भी मेरा मन तो ब्राह्मणों का विश्वास करने को नहीं होता। यह ब्राह्मण जाति वही है जिसने परम दानी राजा नृग का जीवन नरक से भी बुरा कर दिया था, जिसने शिव जी को शाप दिया था जिससे वे आज तक यज्ञ में भाग पाने के अधिकारी नहीं समझे जाते, जिसने तुम्हारे द्वारपालों को तीन जन्मों तक राक्षसों की कुजोनि में जन्मने का शाप दे दिया था। इन सब बातों को जानते हुए भी तुम ब्राह्मणों का विश्वास करते हो!

याही कौतुक के समय, कही सेवकनि आय।
भई रसोई सिद्ध प्रभु, भोजन करिए जाय॥ ५६॥

शब्दार्थ—याही इसी। कौतुक—तमाशा, विस्मयजनक प्रसंग। रसोइ सिद्ध भई—भोजन तैयार हो गया।

भावार्थ—जब यह मनोरंजक बातचीत ही रही थी, तभी सेवकों ने आकर निवेदन किया—महाराज, रसोई तैयार है। चलकर भोजन कीजिए।

विप्र-सहित असनान करि, धोती पहिरि बनाय।
संध्या करि मध्याह्न की चौका बैठे जाय॥ ५७॥

शब्दार्थ—मध्यान्ह—दोपहर।

भावार्थ—रसोई की सूचना पाकर श्रीकृष्ण ने सुदामा के साथ स्नान किया, नयी धुली-धुलाई धोती पहनी और तब दोपहर की संध्या करके भोजन के लिए चौके में जाकर बैठे।

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता,
जीती जिन सोभा है सरद हू के चंद की।
दूसरे परोसा भात सोंधो सुरभी को घृत,
फूले-फूले फुलका प्रफुल्ल दुति मन्द की।

पापर मुँगौरी, बरा, व्यंजन अनेक प्रीति,
देवता बिलोकि रहे देवकी के नंद की।
या बिधि सुदामा जू को आछे कै जेंवाय प्रभु,
पाछे तें पछियावरि परोसी आनि कंद की ॥५८॥

शब्दार्थ – रूपे के—चाँदी के। रुचिर—सुन्दर। पायस—दूध में बनी खीर। सिता—मिसरी। सोंधो—सोंधा, सुगंधित। सुरभी—गाय। प्रफुल्ल—खिला हुआ श्वेत कमल। दुति (द्युति)—चमक, शोभा। आछे कै—अच्छी तरह। पछावरि—श्री खंड, सिखरन—दही या मट्ठे में शकर डालकर बनी वस्तु। भोजन के पश्चात् मीठी वस्तु खाने से पाचन-शक्ति ठीक रहती है। आनि—लाकर। कन्द—मिश्री, चीनी, मीठी। अलंकार—प्रतीप।

भावार्थ—चाँदी के थाल में शरद ऋतु के चंद्रमा से भी स्वच्छ दूध की खीर, जिसमें मिश्री पड़ी थी, बढ़िया चावल, गाय का सुगंधित घी, फूले-फूले फुलके, पापर, मुँगौरी, बरा आदि तरह-तरह के व्यंजन सुदामा के सामने आये। श्रीकृष्ण ने अपने मित्र को ऐसे प्रेम से भोजन कराया कि देवता भी वह प्रीति देखते ही रह गये। भोजन के अंत में श्रीखंड या सिखरन परोसी गयी।

करि आचमन मुख धोयकै, पान खाय सुख पाय।
पौढ़े पलका पै तबै, कृष्ण पलोटैं पाँय ॥ ५८ अ ॥

भावार्थ—भोजन के पश्चात मुँह-हाथ धोकर, कुल्ला करके, पान खाकर और बहुत सुखी होकर सुदामा पलंग पर लेटे। तब श्रीकृष्ण उनके पैर दबाने लगे।

परम कृपा दिन-दिन करी कृपानाथ जदुराय।
मित्र भावना बिस्तरी दूनो आदर भाय ॥ ५८ आ ॥

भावार्थ—इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने सुदामा पर दिन-दिन अधिकाधिक कृपा की, आदर-सत्कार और मित्रता का भाव भी बहुत बढ़ गया।

सात दिवस यहि बिधि रहे, दिन-दिन आदर भाव।
चित्त चल्यौ घर चलन कौं, ताकर सुनौ बनाव ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—विधि—प्रकार, तरीका। चित्त चल्यो—इच्छा हुई।

भावार्थ—सात दिन इस प्रकार सुदामा ने वहाँ बिताये। खूब आदर-सत्कार उनका हुआ। तब उनके मन में घर चलने की इच्छा हुई, यह प्रसंग सुनिए।

दाहिने बेद पढ़ैं चतुरानन, सामुहें ध्यान महेस धर‌यो है।
बाएँ दुऔ कर जोरि सुसेवक देवन साथ सुरेस ख‌यो है।
एतेई बीच अनेक लिए धन पायन आय कुबेर पर‌यो है।
देखि बिभो अपनो सपनो, बपुरो वह बाम्हन चौंकि पर‌यो है ॥६०

शब्दार्थ—दाहिनें—दाई ओर। चतुरानन—ब्रह्मा। सामुहे—सम्मुख, सामने। दुऔ—दोनों। कर—हाथ। सुरेश—इन्द्र। विभौ (वैभव)—ऐश्वर्य। बपुरो—बेचारा।

भावार्थ—श्रीकृष्ण की कृपा से सुदामा को अपार वैभव प्राप्त हुआ। प्रत्यक्ष रूप से इस दान की सूचना श्रीकृष्ण ने न देकर सुदामा को एक स्वप्न में सारे ऐश्वर्य की एक झलक-सी दिखा दी। जन्म का दरिद्री ब्राह्मण वह स्वप्न देख कर चौंक पड़ा। उसके दाहिनी ओर खड़े हुए ब्रह्मा जी वेद पढ़ रहे थे, सामने की ओर शिव जी समाधि लगाये हुए थे, बायीं ओर अपने सेवकों और देवताओं के साथ इंद्र खड़ा था और इसी समय दैताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर अपार धन-संपत्ति लिए हुए आकर पैरों पर गिर पडा।

वस्त्रादिक बहु भाँति के, पहिराए सुखदाय।
करि प्रनाम कर जोरिकै, बोले त्रिभुवनराय ॥ ६० अ ॥

भावार्थ—सातवें दिन श्री कृष्ण ने सुदामा को सुंदर सुंदर और सुख देनेवाले वस्त्र-आभूषण पहराये और तब उस ब्राह्मण को प्रणाम करके वे बोले।

धन्य कहा कहिए द्विज जू, तुम सों जग कौन उदार प्रबीनो।
पाछिली प्रीति निबाहि भली बिधि दोष निवारिकै रोष न कीनो॥
हौं द्विज के चरनोदक हेतु अजन्म कहाय कै जन्म सु लीनो।
आवनकै निजपावनसों तुम, मोसौ अपावन पावन कीनो॥६०आ॥

शब्दार्थ—निवारि कै—निवारण करके, दूर करके ; चरणोदक (चरण-उदक) चरणामृत; अजन्म—अजन्मा, ईश्वर; आवन कै—आकर ; निज पावन सों—अपने पैरों से, अपने आप; अपावन—अपवित्र; पावन—पवित्र; अलंकार—यमक (अन्तिम पंक्ति में)।

भावार्थ—श्रीकृष्ण ने सुदामा को सुन्दर वस्त्राभूषण आदि पहनाने के बाद एक दिन कहा—ब्राह्मण देवता ! तुमने हमारे विद्यार्थी-जीवन की प्रीति का भली-भाँति निर्वाह किया और हम पर किसी तरह का क्रोध न करके हमारे अपराधों को क्षमा किया। वास्तव में तुम्हारे समान चतुर संसार में कौन हो सकता है ? मैं ब्राह्मणों का परम भक्त हूँ। यों तो मैं अजन्मा हूँ ; परन्तु अपना वह निर्गुण रूप त्याग कर ब्राह्मणों का चरणामृत पाने के लिए ही अवतार धारण करता हूँ। तुमने स्वयं ही मेरे स्थान पर पधार कर मुझ अपवित्र को भी पवित्र कर दिया। तुम धन्य हो।

गोपुर लौं पहुँचाय कै, फिरे सकल दरबार।
मित्र-बियोगी कृष्न के, नेत्र चली जलधार॥६० इ॥

शब्दार्थ—गोपुर—किले या पुरी का प्रधान फाटक।

भावार्थ—श्री कृष्ण द्वारका पुरी के प्रधान फाटक तक अपने सारे दरबारियों के साथ सुदामा को पहुँचाने गये। मित्र को बिदा करते समय प्रेमी हृदय श्री कृष्ण की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी।

देनो हुतो सो दै चुके, बिप्र न जानी गाथ।
चलती बेर गुपाल जू, कछू न दीन्हो हाथ॥६१॥

शब्दार्थ—हुतो—था; गाथ—गाथा, कथा, रहस्य; बेर (बेला) समय।

भावार्थ—श्री कृष्ण ने सुदामा को जो कुछ दिया, वह सब गुप्त था, सुदामा को उसकी कोई सूचना नहीं थी। मित्र को विदा करते समय प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने उसे कुछ भी नहीं दिया।

सुदामा—

वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की भाँति।
यह पठवनि गोपाल की, कछू न जानी जाति ॥६२॥

शब्दार्थ—पुलकनि—रोमांच होना, प्रसन्नता; भाँति—रीति, पठवनि—विदाई, भेजना।

भावार्थ—श्री कृष्ण से बिदा होकर जब सुदामा घर की ओर चला तो मन में सोंचने लगा - श्री कृष्ण की लीला कुछ समझ में नहीं आती। कहाँ तो प्रेम से अत्यंत पुलकित होकर और बड़ी आतुरता तथा उमंग से उन्होंने मेरा स्वागत किया, सात दिन तक तरह-तरह से मेरा आदर - सत्कार किया और कहाँ इस तरह खाली हाथ बिदा कर दिया। उनका रहस्य कुछ समझ में नहीं आता।

घर-घर कर ओड़त फिरे, तनिक दही के काज।
कहा भयो जो अब भयो, हरि को राज-समाज ॥६३॥

शब्दार्थ—कर ओड़त फिरे - हाथ पसारते रहे, माँगते थे; तनक—थोड़ा : काज—लिए, वास्ते : भयो—हुआ : राजसमाज राजसी ठाटबाट।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के आदर-सत्कार का एक बार स्मरण करने के पश्चात अपने को खाली हाथ लौटते देखकर सुदामा बहुत खिझलाये। तब उन्होंने मन ही मन श्रीकृष्ण के स्वभाव की आलोचना करते हुए अपने को धीरज दिया। उन्होंने कहा—संसार में धन पा जाने से किसी की प्रकृति थोड़े ही बदल जाती है। ये कृष्ण वही हैं जो बाल्यावस्था में जरा से दही के लिए घर-घर हाथ फैलाते फिरते थे। उनकी वह ओछी आदत इतनी संपत्ति पा जाने के बाद भी बदल कैसे सकती है? जब प्रकृति के ऐसे ओछे शुरू से ही हैं

तब राज-समाज हो जाने पर भी मुझे कुछ देने की उदारता उनमें कहाँ से आ सकती है ?

विशेष—बड़ी आशा बाँधकर आये हुए व्यक्ति के निराश होने पर उसकी विचारधारा किस प्रकार खीझभरी होती है और किस प्रकार निराश करने वाले के चरित्र की आलोचना वह करता है, इसका बहुत मनोवैज्ञानिक चित्रण इस दोहे में दिया गया है।

हौं आवत नाहीं हुतौ, वाही पठयौ ठेलि।
अब कहिहौं समुझाइ कै धन धन धरौ सकेलि ॥६४॥

शब्दार्थ—वाही—उसी ने । ठेलि—बाध्यकर, जबरदस्ती, बरजोरी। धन—(१) स्त्री (२) धन-संपत्ति । जाइकै—जाकर। सकेलि—समेट कर। अलंकार—यमक।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के स्वभाव की आलोचना करके, उनके संबंध में अपनी खिझलाहट प्रकट करने के पश्चात्, सुदामा का ध्यान अपनी स्त्री की ओर गया जिसने बार बार हठ करके उसे द्वारका भेजा था और पति के समझाने पर जरा भी ध्यान न दिया था। स्त्री को आशा थी और वही उसने सुदामा पर बार-बार प्रकट भी की थी कि श्रीकृष्ण अपने पुराने सहपाठी की दरिद्रता दूर कर देंगे। सुदामा का जब द्वारका में खूब आदर-सत्कार हुआ, तब उन्हें भी वैसा ही विश्वास होने लगा था; परंतु आज जब वे खाली हाथ लौटे तो स्त्री के प्रति भी झुंझलाकर उन्होंने मन ही मन कहा—मैं तो श्रीकृष्ण के पास आना ही नहीं चाहता था, क्योंकि इनकी प्रकृति का ओछापन मैं खूब जानता था, परंतु उस नासमझ स्त्री ने मुझे बार-बार ठेलकर यहाँ भेजा और मेरे समझाने पर जरा भी ध्यान न दिया। अब मैं खाली हाथ जाकर उससे कहूँगा—श्रीकृष्ण को महादानी, दीनानाथ और न जाने क्या-क्या तू समझती थी; ले, तेरे लिए लढ़ियों में भर भर कर धन-संपत्ति उन्होंने भेजी है; अच्छी तरह सम्हालकर रख ले !

बालापन के मित्र हैं, कहा देऊँ मैं साप।
जैसो हरि हम को दियो, तैसो पइहैं आप ॥६५॥

शब्दार्थ—बालापन - लड़कपन। साप—(शाप)— अमंगल शब्द।

शब्दार्थ—स्त्री पर अपनी झुंझलाहट उतारने के पश्चात् सुदामा का ध्यान फिर श्रीकृष्ण की ओर गया और उसने मन ही मन कहा—मैं बिल्कुल दरिद्र और दुखी हूँ; यह सब जानते हुए और सब तरह से साधन-संपन्न होते हुए भी श्री कृष्ण ने मुझे खाली हाथ लौटा दिया, उनकी इस निष्ठुरता पर मुझे गुस्सा तो बहुत आ रहा है, परतु वे मेरे सहपाठी रहे है, यह सोचकर कुछ और दुखदायी शाप न देकर मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि जैसा उन्होंने मुझे दिया, वैसा ही उन्हें भी मिले।

प्रीति आरसी बिमल है, सब कोउ सवै जानि।
कपट मोरचा लगत ही, होत दरस की हानि ॥६५अ॥

भावार्थ—निर्मल प्रेम एक स्वच्छ शीशे के समान है जिसको सब सहर्ष अपनाते है और अपना प्रतिबिंब देखकर प्रसन्न होते है। उसमें जंग लग जाती है तब उसमें प्रतिबिंब झलकाने की शक्ति नहीं रह जाती। इसी प्रकार प्रेम में जब कपट-भाव आ जाता है, तब वह भी आनंददायी नहीं रह जाता।

इतनो मम आदर कियो, दियो न कछु मोहिं म्यम।
या प्रकार सोचत चल्यो, बिप्र आपने धाम ॥६५अ॥

भावार्थ—श्रीकृष्ण ने मेरा आदर-सत्कार तो इतना किया, परंतु मुझे लौटा दिया खाली हाथ ही। कितनी विचित्र बात है—यही सब सोचते सोचते सुदामा अपने घर की ओर जा रहा था।

नौ गुनधारी छगुन सों, तिगुना मध्ये जाय।
लायो चापल चौगुनी, आठौं गुननि गवाँय ॥६६॥

शब्दार्थ—नौगुनधारी—नौगुण धारण करनेवाला, नौ तागे का जनेऊ धारण करनेवाला, ब्राह्मण सुदामा। छगुन (षटगुण) ब्राह्मण

के षटकों—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह इन छ गुणों—द्वारा। तिगुना मध्य—तीन गुणों—यजन, पठन, दान वाले क्षत्रियों में द्वारकाधीश श्री कृष्ण आदि यादवों में। जाय—जाकर। चापल (चापल्य) चंचलता, विकलता। आठों गुनन—आठों गुणों से—ज्ञान के साधन—विवेक, वैराग्य, षट-सम्पति, मुमुक्षता श्रवण, मनन, ध्यान, आसन और समाधि है। गँवाय—गँवाकर, खोकर; आशय यह कि अपने चित्त की स्थिरता और शांति खोकर चपलता और अशांति ही पा सका। विशेष—इस दोहे के नौगुन का अर्थ कहीं कहीं—

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह:।
धीविद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

के आधार पर भी लगाया जाता है।

भावार्थ—अपने धर्म-कर्म में लगा रहने वाला ब्राह्मण सुदामा संसार का ऐश्वर्य भोगने वाले श्रीकृष्ण के पास जाकर अपने चित्त की स्थिरता और शांति खोकर चपलता और अशांति ही पा सका।

और कहा कहिए जहाँ, कंचन के ही धाम।
निपट कठिन हरि को हियो, मोको दियौ न दाम॥६७॥

शब्दार्थ—कचन—सोना। धाम—घर, स्थान। निपट—बिल्कुल, अच्छी तरह से। निठुर (निष्ठुर) कठोर, कड़ा। दाम—दमड़ी—धन।

भावार्थ—सुदामा मन में फिर सोचने लगा—और क्या कहूँ जहाँ इतने-इतने बड़े सोने के महल है, उस द्वारका के स्वामी श्रीकृष्ण ने मुझे बिल्कुल खाली हाथ ही लौटा दिया।

बहु भंडार रतनन भरे, कौन करे अब रोष।
लाग आपने भाग को, काको दीजै दोष॥ ६८॥

शब्दार्थ—रतनन—रत्नों से। रोष—क्रोध। लाग आपने भाग को—अपने ही भाग्य का दोष है; यह एक मुहावरा है। काको—किसको।

भावार्थ—भारतीयों को भाग्य पर विश्वास, दुख और कष्ट के दिनों में बहुत सहारा देता है। सुदामा को भी निराशा की स्थिति में इस विश्वास से बड़ा धीरज हुआ। एक बार तो उसके मन में आया कि श्रीकृष्ण के यहाँ न जाने कितने भंडार हैं जिनमें बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, पर उन्होंने मुझे कुछ भी न दिया; लेकिन दूसरी बार उसने यह कह कर सतोष किया कि इसमें श्रीकृष्ण का क्या दोष है ? मेरा भाग्य ही खोटा है जो मैं ऐसे निर्धन घर में पैदा हुआ और अब भी मेरे भाग्य मे धन नहीं बदा है। अतएव धन न मिलने मे श्रीकृष्ण का क्या दोष, सारा दोष तो मेरे भाग्य का ही है।

इमि सोचत-सोचत झखत, आयो निज पुर-तीर।
दीठ परी इक बार ही, हय-गयंद की भीर ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—इमि—इस तरह। झखत—झीखते हुए, पछताते हुए। तीर—किनारे, समीप। दीठि (दृष्टि) - निगाह। हय—घोड़ा—गयन्द—हाथी।

भावार्थ—इस प्रकार मन ही मन विचार करता, झुँझलाता और भाग्य को कोसता हुआ सुदामा अपने गाँव के पास ज्योंही पहुँचा कि उसे बहुत-से हाथी-घोड़ों की भीड़ दिखायी दी।

हरि दरसन तें दूर दुख भयो, गयो निज देस।
गौतम रिषि को नाउँ लै कीन्हों नगर-प्रबेस ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—गौतम रिषि को नाउँ लै—गौतम ऋषि का नाम लेकर किसी अन्य स्थान में प्रवेश करना मंगलप्रद होता है, ऐसा शास्त्रीय मत है। यहाँ सुदामा ने उसे अपना गाँव तो समझा नहीं। इसलिए गौतम ऋषि का नाम लिया। कीन्हों—किया।

भावार्थ—श्रीकृष्ण की कृपा से सुदामा के सब दुख दूर हो गये। उन्होंने गौतम ऋषि का नाम लेकर अपने गाँव में प्रवेश किया।

वैसोइ राज-समाज बने गज-बाजि घने मन संभ्रम छायो।
कैधौं परयो कहुँ मारग भूलि कै फेरिकै हौं अब द्वारिका आयो।

भौन बिलोकिबे को मन लोचत सोचत ही सब गाँव मँझायो।
पूछत पाँड़े फिरे सबसों; पर झोपरी को कहुँ खोज न पायो ॥७१॥

शब्दार्थ—गजबाजि—हाथी और घोड़े। घने—बहुत-से। संभ्रम—भ्रान्ति, भ्रम, सन्देह। कैधौं परचो कहुँ मारग भूलि कै—रास्ता भूल कर कहीं और तो नहीं आ पहुँचा। भौन बिलोकिबे को—अपना घर खोजने के लिए। मनलोचत—(१) मन में तर्क-वितर्क करते हुए (२) मन में चाहते हैं। मँझायो - छान डाला, खोज डाला। खोज—चिन्ह, पता।

भावार्थ—सुदामा ने देखा कि राजमहलों और हाथी-घोड़ों का जैसा समूह मैंने द्वारका में देखा था, वैसा ही यहाँ भी है। जान पड़ता है कि मैं रास्ता भूलकर फिर द्वारिका ही आ गया हूँ। रास्ते भर इसी प्रकार मन में सोचते-सोचते उन्होंने सारा गाँव छान डाला; इधर उधर सबसे पूछताछ भी की; परंतु उन्हें अपनी झोपड़ी का कहीं पता न लगा।

सुदामा—देव-नगर कै जच्छपुर, हौं भटक्यो कित आय ?
नाम कहा यहि नगर को, सो न कहौ समुझाय ॥
सो न कहौ समुझाय, नगरवासी तुम कैसे ?
पथिक जहाँ संभ्रमहिं, तहाँ के लोग अनैसे ॥ ७१ अ ॥

शब्दार्थ—देवनगर—अमरावती। यच्छपुर (यक्षपुर)—अलकापुरी। कित—कहाँ। सो—वह। सम्भ्रमहि—भूल जायँ, भटक जायँ भ्रम में पड़ जायें। अनैसे—खोटे, बुरे।

भावार्थ—जब सुदामा को अपनी झोपड़ी का पता न लगा तब उन्होंने यहाँ के निवासियों से झुंझला कर पूछा—अरे भाई, बताओ तो कि आखिर यह नगर कौन-सा है, कोई देवनगर है या कोई यक्षपुर है और इसका नाम क्या है। मुझसे तुम लोग यह सब समझाकर क्यों नहीं कहते ? जिस नगर में पथिक भ्रम में पड़ जायँ और कोई उन्हें ठीक मार्ग न बताये, वहाँ के लोग तो बहुत भले नहीं समझे जाते।

नगरवासी—लोग अनैसे नाहिं, लखौ द्विजदेव नगर कैं।
कृपा करी हरिदेव, दियौ है देवनगर कैं॥ ७२॥

शब्दार्थ—नगर कैं—नगर को। हरिदेव—श्रीकृष्ण। कैं दियो है—कर दिया, बना दिया।

भावार्थ—सुदामा का यह आक्षेप सुनकर वहाँ के लोगों ने उत्तर दिया—यहाँ के लोग बुरे नहीं है। यह नगर ब्राह्मण सुदामा का है जिनके परम मित्र श्रीकृष्ण जी ने उन पर कृपा की है। उन्ही की कृपा से यह नगर देवनगर के समान सुन्दर और वैभवपूर्ण हो गया है।

सुन्दर महल मनि-मानिक जटित अति,
सुबरन-सूरज प्रकास मानो दै रह्यौ।
देखत सुदामा जू को नगर के लोग धाए,
भेंटे अकुलाय जोई सोई पाँय छ्वै रह्यौ।
बाम्हनी के भूषन बिबिध-बिधि देखि रह्यौ
जैहौं हौं निकासो सो तमासो जग ज्वै रह्यौ।
ऐसी दसा फिरी जब द्वारिका दरस पायो,
द्वारिका तें सरस सुदामापुर ह्वै रह्यौ॥ ७३॥

शब्दार्थ—मनि-मानिक (मणि-माणिक्य)। जटित—जड़ा हुआ। सुबरन सूरज—सोने का सूर्य। भेंटे अकुलाय—आतुर होकर मिल रहे है; जैहौं—जाऊँगा। हौ—मैं। ज्वै रह्यौ—देख रहा है। सरस—सुन्दर। अलंकार—उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—सुदामा के नगर का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि यहाँ बड़े सुदर सुदर महल है जिनमें मणि और माणिक्य जड़े हुए हैं जिनको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानों वहाँ सोने के सूर्य का सुनहरा प्रकाश वहाँ फैल रहा है—सोने के महल सूर्य के समान हैं और मणि-माणिक्य का प्रकाश सूर्य के प्रकाश के समान। सुदामा को आता हुआ देखकर सब लोग दौड़ पड़े और किसी ने उन्हें गले लगाया और कितने ही उनके पैरों पर गिर पड़े। सुदामा को अब भी

यह विश्वास न हुआ कि यह नगर मेरा ही है। इसलिए उन्होंने तरह-तरह के वस्त्राभूषणों से सजी हुई ब्राह्मणी को देखकर कहा—यहाँ से अब मैं अवश्य ही निकाला जाऊँगा। ब्राह्मणी के नये ठाठ और सुदामा की घबराहट का तमाशा सब लोग देख रहे थे। यह दृश्य देखकर कवि कहता है कि एक बार द्वारका में श्रीकृष्ण का दर्शन करने से ही इतना लाभ हुआ कि उन्हें सुदामापुर जैसा वैभवशाली नगर प्राप्त हो गया जिसके महल द्वारका के महलों से भी सुंदर हैं।

जगर - मगर जोति छाय रही चहूँ ओर,
अगर - बगर हाथी-घोरन की सोर है।
चौपर को बनो है बजार पुनि सोनन के,
महल दुकान की कतार चहुँ ओर है।
भीर-भार धकापेल चहूँ दिसि देखियत,
द्वारिका तें दूनो यहाँ प्यादन को जोर है।
रहिबे को ठाम है न काहू सों पिछान मेरी,
बिन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोर है ॥७३ क॥

शब्दार्थ—जगरमगर—चमचम। अगर बगर—इधर-उधर, घर-बाहर। चौपर को बाजार—चौक। प्यादेन—सिपाहियों का। हाड़ तोर है—मेरी हड्डियाँ तोड़ डालेगा।

भावार्थ—सुदामा भ्रम में पड़ा हुआ अब भी उस नगर में घूम रहा है। उसने देखा कि चारों ओर सोने-चाँदी जैसी स्वच्छ जगमगाहट उस नगर में फैल रही है। और स्थान-स्थान पर हाथी और घोड़ों का कोलाहल हो रहा है। बाजार बड़े बड़े हैं, जिनके दोनों ओर सोने के महल हैं और निचले भाग में दूकानों की कतारें जगमगा रही हैं। सारे बाजार और नगर में खूब भीड़भाड़ है, धक्कमधक्का भी हो रहा है और स्थान स्थान पर खड़े हुए सिपाही सबको डाँट-डपट कर शांत कर रहे हैं। यह सब देखकर सुदामा ने मन में सोचा—इस नगर में न तो मेरी किसी से जान पहचान है, न मेरे रहने का ही ठौर-ठिकाना

है। अगर इस नगर में मैं कहीं रुक गया तो ये अजनबी लोग मेरी हड्डी-पसली तोड़-ताड़ कर बराबर कर देंगे।

फूटी एक थारी, बिन टोटनी की झारी हुती,
बाँस की पिटारी, औ कँथारी हुती टाट की।
बेटें बिन छुरी और कमंडल सौ टूक बहौ,
फाटे हुते पावौ पाटी टूटी एक खाट की।
पथरौटा काठ को कठौता कहूँ दीसै नाहिं,
पीतर को लोटा हो कटोरा हो न बाटकी।
कामरी फटी-सी हुती डोड़न की माला ताक,
गोमती की माटी की न सुधि कहूँ माट की। ७३ख॥

शब्दार्थ—झारी—गरुआ—टोटीदार लोटा। कँथारी—कंथा, थरी। पावौ—खाट के पावे। बाटकी—बटुई। डोंड़न—एक वृक्ष।

भावार्थ—सुदामा को पहले तो अपनी झोपड़ी न मिलने का दुख था, अब धीरे धीरे उन्हें उन चीजों की याद आने लगी जो उसकी झोपड़ी में रखी हुई थी। इन चीजों की पूरी सूची सुदामा ने यहाँ गिना दी है। झोपड़ी के खो जाने से उसकी ये चीजें चली गयीं—टूटी-फूटी एक थाली, धातु की एक झारी जो इतनी पुरानी थी कि उसकी टोटनी टूट चुकी थी, बाँस की एक पिटारी, टाट की एक कथरी जो बिछाने के काम आती थी, एक छुरी जिसका बेंट टूट चुका था, सिर्फ लोहे का फल बाकी था, एक कमण्डल जिसमें सैकड़ों छेद थे, एक चारपाई जिसके पावे फटे हुए थे और एक पाटी टूटी हुई थीं, पत्थर का एक पथरौटा, काठ का कठौता, पीतल का लोटा, कटोरा और पतीली, फटी हुई एक कमली, जप करने की एक दानेदार माला और गोमती की मिट्टी से बनी हुई एक मटकी।

चौतरा उजारि कोऊ चामीकर धाम कियो,
छानी तौ उपारि डारी छाई चित्र-सारी जू।

जो हौं होतो घर तौप काहे को चठन देतो,
होनहार ऐसी खोटी दसाई हमारी जू।
हौं तो हो न, काहू लोभलाहु को दिखायो वाहि,
महल उठाय लयो हाय सुखागारी जू।
लाभी लूम वारी दुख भूख को दलन हारी,
गैया बनचारी काहु सोऊ मारि डारी जू॥ ७३ ग॥

शब्दार्थ—चाँमीकर - सोने का। उपारि डारी—उजाड़ दी। चित्र-मारी—चित्रशाला। जो हौ होतो घर—अगर मैं घर पर होता। तो पै तो फिर। लाहु—लाभ। सुखागारी सुख का घर।

विशेष—७३ क, ख, ग—इन तीनों छदों में दरिद्र सुदामा की निधि की जो सूची कवि ने बनायी है, वह बनावटी नही है। ये छद भी नरोत्तम कृत ही जा पडते हैं।

भावार्थ—घूमते घूमते सुदामा उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ उसकी झोपड़ी थी। यहाँ आकर उसने देखा कि उसकी झोपड़ी के आगे का मिट्टी का बना चबूतरा किसी ने तोड़-फोड़ डाला है और उसके स्थान पर सोने का बडा महल खडा कर दिया है। झोपड़ी भी उजाड़ दी गयी है और उसके स्थान पर बहुत सुन्दर चित्रशाला बनी हुई है। सुदामा को यह देखकर बहुत दुख हुआ। उसने समझा कि मेरी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर किसी ने यह सब किया है। इसी से वह मन में सोचता है कि यदि मैं घर पर मौजूद होता तो झोपडी और चबूतरा उजाड़ कर इस तरह महल और चित्रशाला कोई नहीं बना सकता था। इसके लिए भी किसी को दोष देना व्यर्थ है। यह होनहार ही ऐसी थी कि मैं यहाँ से टल गया और लौटने पर यह दुर्दशा देखने को मिली। मैं था नहीं, इस कारण जान पड़ता है कि ब्राह्मणी को लोभ या लाभ दिखाकर किसी ने यहाँ महल बनवा लिया। सबसे अधिक दुख मुझे अपनी उस गाय का है जिसकी पूँछ बहुत लम्बी थी

जो दुख और भूख को दूर करके बहुत सुख देती थी। जान पड़ता है, उसे भी किसी ने मार डाला।

कनक दण्ड कर में लिए, द्वारपाल है द्वार।
जाय दिखायो सबनि मिलि, 'या हैं भवन तुम्हार' ॥७४॥

शब्दार्थ - कनक - सोना। सबनि लै सबने लेकर।

भावार्थ—उस नगर के निवासियों ने सुदामा को एक ऐसे महल के सामने ले जाकर खड़ा किया जिसके द्वार पर सोने का दंड हाथ में लिये हुए एक द्वारपाल टहल रहा था। उन लोगों ने सुदामा से कहा---आपका महल यही है।

कही सुदामा—'हँसत हौ, ह्वै करि परम प्रवीन।
कुटी दिखावहु मोहिं सो, जहाँ बाम्हनी दीन' ॥७५॥

शब्दार्थ—परम प्रबीन—(परम प्रवीण) अत्यंत चतुर।

भावार्थ—उस महल और द्वारपाल को देखकर सुदामा ने उन लोगों से कहा—आप सब तो बहुत चतुर हैं, मुझ दीन ब्राह्मण से इस तरह की हँसी क्यों कर रहे है। मुझे तो मेरी उस झोपड़ी में पहुँचा दीजिए जहाँ मेरी दीन दुखिया ब्राह्मणी रहती है।

द्वारपाल सों तिन कहीं. कहि पठवहु यह गाथ।
आये विप्र महाबली, देखहु होहु सनाथ ॥७६॥

शब्दार्थ—कहि पठवहु—कहला भेजो। सनाथ होहु—कृतकृत्य।

भावार्थ—सुदामा की इस बात का उत्तर उन लोगों ने नहीं दिया। उन्होंने द्वारपाल की ओर मुड़कर कहा—भीतर यह सूचना भिजवा दो कि ब्राह्मण देवता आ गये हैं। अपने पति का दर्शन देख करके सनाथ हो जाओ।

सुनत चलत आनंद युत, सब सखियन लै संग।
नूपुर किंकनि दुन्दुभी, मनहुँ काम चतुरंग ॥७७॥

शब्दार्थ—नूपुर—पाजेब। किंकनि—करधनी। दुन्दुभी (दुन्दुभि) नगाड़ा। काम चतुरंग—कामदेव की चतुरंगाणी सेना। अलंकार—उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—ब्राह्मण यह सूचना पाकर बहुत प्रसन्न हुई और अपनी सखियों के साथ नूपुर और कर्धनी के घुघरुओं की ध्वनि करती हुई इस प्रकार द्वार की ओर चली मानो कामदेव की सेना आ रही हो।

कह्यौ बाम्हनी आय कै, यहै कंत निज गेह।
श्रीजदुपति तिहुँ लोक में, कीन्हों प्रकट सनेह ॥७८॥

भावार्थ—ब्राह्मणी ने सुदामा से आकर कहा—आइये, यही अपना घर है। श्रीकृष्ण ने इस प्रकार हमारी दरिद्रता का नाश करके संसार में अपना प्रेम प्रगट कर दिया है।

सुदामा—हमैं कंत तुम जनि कहौ, बोलौ बचन सँभारि।
इहैं कुटी मेरी हती, दीन बापुरी नारि ॥७९॥

शब्दार्थ—जनि कहो—न कहो। इन्हैं यहीं पर, इसी जगह। हती—थी। बापुरी—बेचारी।

भावार्थ—अपने सामने एक सुन्दर युवती को खड़े देखकर और उसके द्वारा पति सम्बोधन सुनकर सुदामा बहुत चकमकाये और उन्होंने कहा—तू संभाल कर क्यों नहीं बोलती और मुझे "पति" क्यों कह रही है। मेरी पत्नी तो वह दीन-दुखिया स्त्री थी, जो यहीं एक कुटी में मेरे साथ रहती थी।

मैं तो नारि तिहारियै, सुधि सँभारिए कंत।
प्रभुता सुंदरता दई, अदभुत श्रीभगवंत ॥८०॥

भावार्थ—तिहारियै तुम्हारी ही। सुधि सम्हारिए—होश कीजिए, याद कीजिए। श्री भगवन्त—श्रीकृष्ण।

भावार्थ—पति द्वारा इस प्रकार तिरस्कार किये जाने पर भी सुदामा की स्त्री निराश नहीं हुई। पति की शका दूर करने के लिए उसने कहा—जरा ध्यान से देखिये, मैं आपही की स्त्री हूँ। आज मैं दीन-दुखिया अवश्य नहीं हूँ, परन्तु यह सब धन-सम्पत्ति और सुन्दरता मुझे श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त हुई है।

सुदामा—

टूटी-सी मड़ैया मेरी परी हुती याही ठौर,
तामें परो दुख काटौं कहा हेम-धारी री।
जेवर-जराऊ तुम साजे प्रति अंग-अंग,
सखी सोहैं संग वह छूछी हुती छारी री।
तुम तो पटम्बर सो ओढ़े हौ किनारीदार,
सारी जरतारी, वह ओढ़े कारी कामरी।
मेरी वा पँड़ाइन तिहारी अनुहारि ही पै,
बिपदा सताई वह पाई कहाँ पामरी? ॥८१॥

शब्दार्थ—मड़ैया—मड़ई, झोपड़ी। परी हुती—पड़ी हुई थी, बनी थी। दुःख काटौ—दुःख के दिन बिताते थे। हेम-धाम—सोने का घर। जराय—जिसमें हीरे आदि जड़े हों। छूछी हुती खाली थी। छाज—दुबली-पतली। पटम्बर (पाटम्बर) रेशमी वस्त्र। सारी जरतारी—जरी के काम की साड़ी, कामदार साड़ी। तिहारी अनुहारि—तुम्हारे समान रूप वाली। बिपदा सताई—दुःख की मारी।

भावार्थ—अपनी स्त्री की बात सुनकर भी सुदामा को यह विश्वास न हुआ कि जो-कुछ यह कह रही है, ठीक ही है। इसलिए उसने फिर कहा—मेरी एक टूटी-फूटी झोपड़ी यहाँ पड़ी थी जिसमे मैं अपने दुख के दिन किसी प्रकार काट रहता था। इस झोपड़ी के स्थान पर यह सोने के महल कैसे आ गये? तुम तो अंग-अंग में जड़ाऊ गहने पहने हो और इतनी सखियाँ तुम्हारे साथ हैं। परन्तु मेरी वह ब्राह्मणी दुबली-पतली और अकेली थी और उसके शरीर पर कोई गहना नहीं था। तुम जरी के काम की साड़ी पहने हो, किनारेदार रेशमी दुपट्टा पहने हो, उसके पास तो ओढ़ने के लिए सिर्फ काली कमरिया थी। तुम्हारी बातें सुनकर और ध्यान से तुम्हारी ओर देखकर मैं इतना तो कह सकता हूँ कि मेरी वह ब्राह्मणी थी तो तुम्हारी ही सूरत-शकल की, पर यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि जन्म भर कष्ट सहते-सहते दुःख की मारी

दुबली हो जानेवाली वह ब्राह्मणी आठ-दस दिन के अन्तर में ही इतना मोटापा कैसे पा गयी।

ठाढ़ी ह्वै पँड़ाइन कहत मंजु भाइन सों,
प्यारे परौं पाइन तिहारोई जु घरु है।
आए चलि, हरौं स्रम कीन्हों तुम भूरि दुख,
दारिद गमायौ, यों हँसत गह्यो करु है॥
रि द्ध-सिद्धि दासी करि दीन्हीं अबिनासी कृस्न,
पूरन - प्रकासी कामधेनु कोटि बरु है।
चलौ पति भूलौ मति तुम्हैं दान्हीं जदुपति,
संपति सौ लीजिए समेत सुरतरु है॥८२॥

शब्दार्थ - पँड़ाइन—सुदामा पाँड़े की स्त्री। भाइन सों—भावों से। तिहारोई—तुम्हारा ही। पाइन—पैरों में। हरौं स्रम—थकावट दूर करूँ। भूरि—बहुत। दारिद गमायो—दरिद्रता मिटायी। गह्यो करु है—हाथ पकड़ लिया है। अबिनासी (अविनाशी) अक्षय और अनादि। पूरन प्रकाशी—पूर्ण प्रकाशी। कामधेनु—इच्छा पूरी करने वाली देवताओं की गाय। बरु—वर, श्रेष्ठ। समेत सुरतरु—देवों के कल्पवृक्ष के साथ।

भावार्थ—सुदामा के इन तर्कों का उसकी स्त्री ने कोई उत्तर न दिया। उसने बहुत मधुर स्वर में और बड़ी कोमलता से कहा—मैं आपके चरण छूकर कहती हूँ कि आपका घर यही है, इसमें पधारिए। आप इतनी दूर चलकर आये हैं, यात्रा का इतना कष्ट आपने सहा है और श्रीकृष्ण की कृपा से अपनी दरिद्रता का नाश किया है। आइए, अपनी सेवा से अब मैं आपकी थकावट दूर कर दूँ। सुदामा को इस प्रकार समझाते हुए स्त्री ने उसका हाथ पकड़ लिया।

अपनी बातों पर सुदामा को पूरी तरह विश्वास न करते देखकर वह फिर समझाती है—जो श्रीकृष्ण ईश्वर का अवतार हैं और जिनका कभी नाश नहीं होता उन्होंने ही मित्रता निभाने के लिए ऋद्धि-सिद्धियों

सधवा स्त्रियों के लिए 'सौभाग्यवती' शब्द का व्यवहार होता है। हित—हेतु, लिए।

भावार्थ—पति की आज्ञा लेकर सुदामा की स्त्री ने स्नान किया और अत्यन्त पवित्र तथा प्रिय सुगंध लगायी। इसके पश्चात बड़े प्रेम से अपने सौभाग्य की रक्षा के लिए पार्वती की पूजा की।

षटरस बिबिध प्रकार के भोजन रचे बनाय।
कंचन-थार मँगाय कै, तामे धरे रचाय॥ ६१॥

शब्दार्थ—षटरस- मिष्ट, लवण, कटु, कषाय, अम्ल, तिक्त। बनाय—रचे, सावधानी से बनाए।

भावार्थ—छहों रसों से युक्त तरह-तरह के भोजन सुदामा की स्त्री ने बनाये और सोने के थाल में उन्हें सजाकर रक्खा।

चंदन-चौकी डारि कै, दासी परम सुजान।
रतन-जटित भाजन कनक, भरि गंगा-जल आन॥ ६२॥

शब्दार्थ—सुजान—चतुर। भाजन-कनक - सोने का पात्र। आनि—लाकर।

भावार्थ—भोजन तैयार देखकर एक चतुर दासी ने चंदन की चौकी बिछा दी और रत्नों से जड़े हुए सोने के एक पात्र में गंगाजल भर कर रख दिया।

घट कंचन को रतन युत, सुचि सुगंध जल पूरि।
रच्छाधान समेत सो, जल-प्रकार भरि पूरि॥ ६३॥

शब्दार्थ—रच्छाधान—(रक्षा + आधान) जल; पात्र रखने का आधार।

भावार्थ—रत्न जड़े हुए सोने का घट पवित्र और सुगंधित जल भर कर एक चौकी और तिपाई लाकर दासी ने रख दिया।

रतन-जटित पीढ़ा कनक, धरयो जु बैठन काम।
मरकत-मनि चौकी धरी, कछुक दूर छबि-धाम॥ ६४॥

शब्दार्थ—काम—हेतु, लिए। मरकतमनि—नीलम। छबिधाम—बहुत सुंदर।

भावार्थ—रत्नों का जड़ा हुआ सोने का पटरा सुदामा के बैठने के लिए रक्खा गया। इससे कुछ दूरी पर मणियों मे जड़ी हुई बहुत सुन्दर चौकी रक्खी गई।

चौकी लई मँगाय कै, पग धोवन को पाथ।
मनि-पादुका विचित्र अति, धरी सलिल के साथ॥ ९५॥

शब्दार्थ—पाथ—जल। पादुका—खड़ाऊँ। सलिल—जल।

भावार्थ—सुदामा जी सिंहासन पर बैठे थे; उसी के पास पैर धोने के लिए एक चौकी रक्खी गई और जल के साथ सुदामा के पहनने को मणियों से जड़ी हुई एक खड़ाऊँ रक्खी गई।

'चलिए भोजन करन को', कह दासी मृदु भाखि।
उठे बिप्र सानंद कहि, 'धन्य-धन्य हरि साखि'॥ ९६॥

शब्दार्थ—मृदुभाषि—मीठे शब्दों मे, मधुर शब्द वाली। साखि—साक्षी। आशय यह कि कृष्ण को साक्षी करके सुदामा जी ने धन्य धन्य कहा।

भावार्थ—दासी ने आकर बड़े कोमल स्वर में सुदामा से कहा—भोजन को पधारिए। सुदामा यह सुनकर श्रीकृष्ण को धन्यवाद देकर बहुत प्रसन्न हुए।

बसन उतारे जायकै, धोवत चरन-सरोज,
चौकी पै छबि देत यों, जनु तनु धरे मनोज॥ ९७॥

शब्दार्थ—बसन—वस्त्र, कपड़े; सरोज कमल; जनु—मानो; तनुधरे—शरीर धारण किए; मनोज—कामदेव।

भावार्थ—वस्त्र उतार कर और चरण कमल धोकर भोजन करने के लिए सुदामा चौकी पर बैठे हुए ऐसे शोभित होते हैं मानो साक्षात कामदेव ही शरीर धारण किये बैठा हो।

पहिरि पादुका बिप्र जब, पीढ़ा बैठे जाय।
रति तें अति छबि-आगरी, पति सौं हँसि मुसकाय ॥९८॥

शब्दार्थ—रति—कामदेव की स्त्री; छवि आगरी—सुन्दरता की खानि।

भावार्थ—खड़ाऊँ पहनकर जब सुदामा भोजन करने के लिए पटरे पर बैठे तब रति से भी सुन्दर उनकी स्त्री हँसती हुई सामने आई।

बिबिध भाँति भोजन धरे, व्यंजन चारि प्रकार।
जोरी पछिऔरी सकल, प्रथम कहे नहि पार ॥९९॥

शब्दार्थ—व्यंजन चारि प्रकार—चार प्रकार के भोजन—चर्व्य चोष्य, लेह्य, पेय; जोरी—एकत्र की; पछिऔरी—भोजन के बाद दिया जाने वाला पेय, शिखरन, तक्र आदि।

भावार्थ—तरह तरह के भोजन और चारों प्रकार के व्यंजन के साथ-साथ अंत में खाई जानेवाली पछिऔरी सुदामा के सामने रक्खी गई।

'हरिहि समर्पौ कंत अब', कही मंद हँसि बाम।
करि घंटा कौ नाद त्यों, हरि समर्पि लै नाम ॥१००॥

शब्दार्थ—हरिहि समर्पौ—भोजन आरम्भ करो (मुहावरा); मन्द—धीरे से; नाद—शब्द; त्यों—वैसे ही।

भावार्थ—भोजन सामने आने पर स्त्री ने मुस्कराकर कहा—अब भोजन आरम्भ कीजिए। सुदामा ने तब घंटा बजाकर और भगवान का नाम लेकर उन्हें भोजन समर्पित किया।

अगिन जिमाय बिधान सों, बैस्वदेव करि नेम।
बलि काढ़ी जेंवन लगे, करत पवन तिय प्रेम ॥१०१॥

शब्दार्थ—अगिनि जिमाय—अग्नि आहुति देकर, अग्निहोत्र कर, बिधान—नियम; बैस्वदेवकरि—'विश्व' को बलि देकर; बलि—गोग्रास; पवन करति—पंखा झलती है।

भावार्थ—अग्नि और विश्वदेवा को आहुति देकर गोग्रास

निकाल कर सुदामा ने भोजन आरम्भ किया। उनकी स्त्री बड़े प्रेम से पंखा झलने लगी।

बार-बार पूछति यहै, लीजै जो रुचि होय।
'कृस्न-कृपा पूरन सबै, अबै परोसों सोय' ॥१०२॥

शब्दार्थ—रुचि—इच्छा, अबै—अभी, सोय—वही।

भावार्थ- सुदामा को भोजन करते देखकर स्त्री बार बार पूछती है—जो चीजें आपको अच्छी लगती हों वे और ले लीजिए। अब तो श्री कृष्ण की कृपा से सब चीजें भरी है।

जेइँ चुक अँचवन लगे, करन गये बिस्राम।
रतन-जटित पलका कनक, बुनो सुरेसम-दाम ॥१०३॥

शब्दाथ - रेशम दाम— रेशम की डोरी।

भावार्थ- भोजन और आचमन करने के पश्चात रेशम की डोरी से बिने हुए और रत्नों से जड़े हुए सोने के पलँग पर विश्राम करने गये।

ललित बिछौना बिरचिकै, पाँयत कसिकै डोरि।
राखे बसन सुसेवकनि रुचिर अतर सों बोरि ॥१०४॥

शब्दार्थ ललित - सुन्दर। बिरचिकै—बना कर, सजा कर। पाँयत—पैर की तरफ। पाँयत कसि कै डोर—पलँग के पाय में रेशम की डोर लगाकर। अतर—इत्र। बोरी—बसाकर, सुगंधित।

भावार्थ उस पलँग पर सेवकों ने सुदर बिछौने बिछा दिये। पलँग की डोरी कस दी और वस्त्र इत्र आदि सुगंधित चीजों से तर करके सुवासित कर दिया।

पानदान नेरे धरयो, भरि बीरी छबि-धाम।
चरन धोय पौढ़न लगे, करन हेत बिस्राम ॥१०५॥

शब्दार्थ— नेरे—(निकट) पास, समीप। बीरी— पान का बीड़ा। छबिधाम—सुन्दर। चरन धोय पौढ़न लगे—भोजनोपरान्त चरण धोकर लेटने का विधान है।

भावार्थ—पलंग के पास आकर स्त्री ने पानदान रक्खा और पान का सुंदर बीड़ा लगाकर दिया। तब सुदामा पैर धोकर विश्राम करने के लिए पलंग पर लेटे।

कोउ चँवर कोउ बीजना, कोउ सेवत पदचारु।
अति बिचित्र भूषन सजे, गज मोतिन के हारु ॥१०६॥

शब्दार्थ—चँवर—(चामर) चौंर। बीजना—(व्यजन) पंखा। गजमोती—गजमुक्ता। हारु (हार) माला।

भावार्थ—सुदामा को विश्राम करते देखकर कोई दासी चमर डुलाने लगी, कोई पंखा झलने लगी। सेवक उनके चरण दबाने लगे। सब दास-दासियाँ सुंदर वस्त्र-आभूषणों से सजे थे और गजमुक्ताओं के हार पहने थे।

करि सिंगार पिय पैं गई, पान खाति मुसकाति।
'कहौ कथा सब आदि तें, किमि दीन्हीं यह भाँति' ॥१०७॥

शब्दार्थ—किमि—किस प्रकार। एहि भाँति—इस रूप में।

भावार्थ—पति को विश्राम करते देखकर सुदामा की स्त्री शृंगार करके पान खाकर मुस्कराती हुई उनके पास पहुची। पति से उसने बड़े प्रेम से कहा—अब मुझे वह कथा आरम्भ से सुनाइए कि किस प्रकार श्री कृष्ण ने हमको इतनी सम्पति दी।

कही कथा सब आदिते, राह चले की पीर।
सोवत जाम ठाढ़ो कियो, नदी गोमती-तीर ॥१०८॥

भावार्थ—सुदामा ने आदि से ही कथा सुनाना आरम्भ किया। पहले राह के कष्टों का वर्णन किया और फिर बताया कि किस प्रकार उन्होंने मुझे गोमती नदी के किनारे पहुँचा दिया।

गए द्वार जिहि भाँति सौ, सो सब करी बखान।
कहि न जाय मुख लाख सों, कृस्न मिले ज्यों आन ॥१०९॥

शब्दार्थ—बखान करी—बड़ाई करते हुए वर्णन किया। मुख लाख सों—लाख मुख से भी। आन—आकर।

भावार्थ—सुदामा जिस प्रकार श्री कृष्ण के द्वार पर पहुँचा उस कथा का भी उसने वर्णन किया और तब कहा कि कृष्ण जिस आदर भाव से मिले उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

कर गहि भीतर लै गए, जहाँ सकल रनिवास।
पग-धोवन को आप ही, बैठे रमा-निवास ॥११०॥

शब्दार्थ—रमानिवास—लक्ष्मीपति, विष्णु, कृष्ण।

भावार्थ—सुदामा ने कहा—मेरा हाथ पकड़ कर श्री कृष्ण मुझे रनिवास में ले गये। वहाँ वे लक्ष्मीपति स्वयं ही मेरे पैर धोने लगे।

देखि चरन मेरे चल्यो, प्रभु नयननि ते बारि।
ताही सो धोए चरन, देख चकित नर-नारि ॥१११॥

शब्दार्थ—बारि चल्यो—आँसू बहने लगे।

भावार्थ—मेरी चरणों की दुर्दशा देखकर श्री कृष्ण की आँखों से जो जलधारा बही उसी से उन्होंने पैर धो डाले। वहाँ उपस्थित सभी नर-नारी यह दृश्य देखकर चकित हो गये।

बहुरि कही श्रीकृष्ण जिमि, तंदुल लीन्हें आप।
भेंटे हृदय लगाय कै, मेटे भ्रम संताप ॥११२॥

शब्दार्थ—भ्रम—सन्देह। सन्ताप—दुख।

भावार्थ—इसके पश्चात सुदामा ने वे बातें कहीं कि जिस प्रकार श्री कृष्ण ने चावल लेकर खाये थे और सुदामा को हृदय से लगाकर उनका सारा दुख दूर किया था।

बहुरि कही जेवनार सब, जिमि कीन्हीं बहु भाँति।
बरनि कहाँ लगि हौं कहौं, सब व्यंजन की पाँति ॥११३॥

भावार्थ—तब सुदामा ने उस जेवनार का वर्णन किया जो उन्होंने कृष्ण के यहाँ की थी और कहा कि जो जो व्यंजन मैंने वहाँ खाये थे उन सब का वर्णन मैं कहाँ तक कर सकता हूँ!

दिन प्रति अधिक सनेहसों, सपन दिखायो मोहिं।
सो देख्यो परतच्छ ही, सपन न निसफल होहिं ॥११४॥

शब्दार्थ—परतच्छ—(प्रत्यक्ष) आँखों के सामने, दृष्टि पर। निसफल—(निष्फल) असफल, बेकार।

भावार्थ—जितने दिन मैं वहाँ रहा, उन्होंने स्वप्न में प्रतिदिन मुझे अपार ऐश्वर्य दिखलाया। मेरे वे स्वप्न आज यहाँ प्रत्यक्ष हो गये और अब मुझे विश्वास हो गया कि स्वप्न झूठे नहीं होते।

बरनि कथा यहि बिधि सबै, कह्यो आपनो मोह।
कृस्न कृपानिधि भगत-हित, चिदानंद संदोह ॥११५॥

शब्दार्थ—मोह—भ्रम, मिथ्या-धारणा। भगत-हित—भक्त-हित-कारी। चिदानन्द (चित+आनंद) ईश्वर का रूपनिरूपण—सत् चित्, आनंद। संदोह—समूह। चिदानंद संदोह—ज्ञान और सुख के पुञ्ज।

भावार्थ—इसके पश्चात् सुदामा ने खाली हाथ लौटते समय कुछ न पाने की निराशा का भी वर्णन किया जिसके कारण उन्होंने कृष्ण को उल्टी सीधी बातें मन ही मन कही पर आज उसने स्वीकार किया कि श्री कृष्ण भक्तों के हितकारी हैं और ज्ञान तथा आनन्द के समूह हैं।

साजे सब साज बाज बाजि गज राजत हैं,
राजत रुचिर रथ पालकी बहल हैं।
रतन-जटित सुभ सिंहासन बैठिबे कों,
चौकि प्रीति कामधनु कल्पतरु लहलहैं।
देखि-देखि भूषन बसन दामि-दासन के,
सुख पाकसासन के लागत सहल हैं।
संपति सुदामाजू को जहाँ लौं दई है प्रभु,
कहाँ लौं गनाऊँ जहाँ कंचन महल हैं ॥११६॥

शब्दार्थ—साज-बाज—साज सामान। बाजि—घोड़ा। राजत—शोभा दे रहा है। बहल—बहली, सुन्दर छायादार-बैलगाड़ी। चौक प्रति—प्रतिचौक में, प्रति आँगन में। कल्पतरु—कल्पद्रुम—कल्पवृक्ष

जो सारी कामनाओं की पूर्ति कर सकता है। पाकसासन—इंद्र। लागत सहल-सरलता से प्राप्त किये जा सकते हैं। लौं—तक।

भावार्थ—इस छंद में श्री कृष्ण ने सुदामा को जो सम्पति दी थी उसी की चर्चा की गई है। सुदामा जी के पास अब सब तरह से सजे हाथी, घोड़े, रथ, पालकी और छायादार बैलगाड़ियाँ हैं। बैठने के लिए रत्नों से जड़ा हुआ सिंहासन है। हर महल के आँगन में कामधेनु और कल्पतरु हैं। सुदामा के सेवक और सेविकायें जो वस्त्र-आभूषण धारण किये हैं उन्हें देखकर देवराज इन्द्र के सुख भी बहुत साधारण से जान पड़ते हैं। सारांश यह है कि श्री कृष्ण ने सुदामा को जितनी सम्पति दी है उसकी किसी प्रकार गणना नहीं हो सकती, वह सम्पत्ति कितनी है उसका अनुमान केवल इतने से किया जा सकता है कि सुदामा के सारे महल सोने के बने हैं।

गजसाला बाजिसाला लीन्हें गजराज खरे,
ब्रजराज महाराज राजन समान के।
बानिक बिबिध बने मंदिर कनक सोहैं,
मनि जरे मन मोहैं सब देवतान के।
हीरा लाल ललित झरोखन मैं झलकत,
झिम-झिम झुमक झले हैं मुकतान के।
जानी नहिं बिपति सुदामाजू की कहाँ गई,
देखिए बिधान जदुपतिजू के दान के॥१७॥

शब्दार्थ—बाजिसाला—बाजिशाला, घुड़सार। गजसाला—गजशाला, हथसार—हाथीखाना। बानिक—बनान, रूप में। झिम-झिम—धीरे धीरे। झूमक—गुच्छा, एक प्रकार का आभूषण जो स्त्रियाँ कान में पहनती हैं।

भावार्थ—इस छंद में श्री कृष्ण के दान की महिमा कवि ने बतलाई है। श्री कृष्ण से भेंट होने के पूर्व सुदामा बड़ी विपत्ति में था और बड़े दुःख से दिन काट रहा था। परन्तु भेंट होने के पश्चात उसका

ऐश्वर्य इतना बढ़ गया कि स्वयं श्री कृष्ण के समान ही उसके पास भी गज और बाजिशालायें हैं। उसकी सवारी के लिये हर समय गजराज तैयार रहते हैं। उनके सोने के महल बहुत कलापूर्ण रीति से बने हैं जिनमें मणियाँ जड़ी हैं और जिनके झरोखों में हीरे और लालों के साथ साथ मोतियों की झालरें झूम रही हैं। इन सबको देख देख कर देवता भी मुग्ध हो जाते हैं।

कहूँ सपनेहूँ सुबरन के महल होते,
पौरि मनि-मंडप कलस कब धरते ?
रतन-जटित बर सिंहासन बैठिबो को,
खरे ह्वै खवास मो पै चौंर कब ढरते ?'
देखि राज-सामा निज बामा सों सुदामा कहैं,
कब ये भंडार मेरे रतन सों भरते ?
जौ पै पतिव्रता तू न देती उपदेस तौ पै,
एती कृपा मोपै द्वारिकेस कब करते ? ॥११८॥

शब्दार्थ—पौरि—द्वार, फाटक। मनि मंडप—मणियों के बने मंडप। खवास—सेवक। चौर-ढरते—चमर-डुलाते। राजसामा—राज समान, राज वैभव। एती—इतनी। द्वारकेस (द्वारकेश) कृष्ण।

भावार्थ—द्वारका से खाली हाथ लौटते समय निराशा की स्थिति सुदामा एक बार स्त्री का स्मरण करके झुँझलाये थे, परंतु आज अपने दरिद्र का नाश देखकर वे उसके कृतज्ञ होते हैं और स्वीकार करते हैं कि दुखों से इस प्रकार मुक्ति मिलना स्त्री के आदेशों का ही फल है। सुदामा ने एक दिन अपनी अपार सम्पति देखकर और बहुत कृतज्ञ होकर अपनी स्त्री से कहा—सोने के बड़े-बड़े महल द्वारों पर रखे हुए मणियों से जड़े कलश, बैठने के लिए रत्न जड़ित सिंहासन, चँवर डुलाने के लिए बहुत से दास और रत्नों से भरे हुए भंडार, मुझे स्वप्न में भी नहीं प्राप्त हो सकते थे यदि तू मुझे द्वारका जाने का उपदेश न

देती ! तेरे उपदेश के अनुसार चलने के कारण ही श्रीकृष्ण ने मुझपर इतनी कृपा की है ।

उठे पहिरि अंबर रुचिर, सिंहासन पै आय ।
बैठे प्रभुता देखि कै, सुरपति रह्यो लजाय ॥ ११६ ॥

शब्दार्थ—अम्बर—वस्त्र । सुरपति—देवपति, इंद्र ।

भावार्थ—विश्राम करने के पश्चात सुन्दर रेशमी वस्त्र पहनकर सिंहासन पर आकर (सुदामा) विराजमान हुए । उस समय उनकी प्रभुता देखकर इन्द्र भी लज्जित हो गया ।

कै वह टूटी-सी छानी हती, कहँ कंचन के अब धाम सुहावत ।
कै पग में पनही न हती, कहँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत ॥
भूमि कठोर पै रात कटै, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत ।
कै जुरतो नहिं कोदो सवाँ, प्रभु के परताप तें दाख न भावत ॥१६॥

शब्दार्थ—कै—या, अथवा । हती—थी । महावत—हाथीवान । सेज (शय्या) । परताप—प्रताप, तेज, कृपा । दाख—किशमिश-मुनक्का, आशय मेवों से है ।

भावार्थ—सम्पत्ति पाकर मनुष्य के स्वभाव में बहुत परिवर्तन हो जाता है । श्रीकृष्ण की कृपा से अपार सम्पति मिल जाने के कारण सुदामा की प्रकृति में भी बहुत परिवर्तन हो गया । द्वारका जा के पूर्व उनकी टूटी-फूटी झोपड़ी थी । आज, इसके विपरीत, उनके सोने के महल है । निर्धन और साधनहीन होने के कारण ही कहाँ तो वे नंगे पैर रहते थे, कहाँ आज उनकी सवारी के लिए गजराज सजे हुए हैं । अपने दुःख के दिनों में कठोर पृथ्वी पर बिना बिछावन के ही न जाने कितनी रातें उन्होंने काट दी थीं परन्तु आज उनकी प्रकृति में यह परिवर्तन हो गया है कि कोमल सेज पर भी नीद नहीं आती । पहले उन्हें कोदों-सांवाँ जैसे मोटे आनज भी भरपेट नहीं जुड़ते थे, लेकिन आज दाख जैसे मेवे भी उन्हें अच्छे नहीं लगते ।

Library

धन्य-धन्य जदुबंस-मनि, दीनन पै अनुकूल।
धन्ध सुदामा सहित तिय, कहि बरसहिं सुर फूल ॥१२१॥

शब्दार्थ—जदुबंस-मनि (यदुवंशमणि) श्रीकृष्ण । अनुकूल—प्रसन्न, दयालु ।

भावार्थ—सुदामा पर श्रीकृष्ण की यह दया देखकर देवता फूल बरसाते हैं और कहते हैं—दीनों पर दया करनेवाले हे श्रीकृष्ण ! सुदामा और उसकी स्त्री-सहित तुम धन्य हो ।

बिप्र सुदामा की कथा, कहैं सुनैं चित लाय।
ताको श्रीजदुबीर अति, निसि दिन रहैं सहाय ॥१२१क॥

भावार्थ—सुदामा की यह कथा जो कहे और सुनेगा, उसके श्री कृष्ण सदैव सहायक रहेंगे ।

—:(*):—

पाठ—भेद

छंद १, २, ३ के स्थान पर—

गनपति कृपानिधान, बिद्या, बुद्धि, बिबेक चित।
देहु मोहिं बरदान, प्रेम-सहित हरिगुन कहौं। १।
हरि-चरित्र बहु भाइ, सेष, गनेस न कहि सकै।
प्रेम-सहित चित लाइ, सुनौ सुदामा की कथा। २।

छंद १४ के बाद—

चंद को मित्र चकोर सदा तेइ भोजन आग बिरंचि ने दीनो।
पंकज कौ हितु द्यौसपती हिम जारत ताहि यहै प्रन लीनो।
कर्म बली सुनु री अबला! नित संग रहै सब के पुर तीनो।
लच्छिमी-नाथ सखा जिनके तिनके घर बास दरिद्र ने कीनो।

छंद २० के बाद—

मान बड़ाई प्रेम-रस, गरुआपन औ नेहु।
ये पाँचौ तबही गए जबै कही 'कुछ देहु। ४।

छंद २३ के बाद—

सुदामा—

स्याम सों मिताई मैं तो जब ते जताई यासौं,
तबहीं ते मेरे पाछे काढ़िबे को परी है।
याके हँसि बोले हौं न जानत हौं और दुख,
कालिका—निकाई राम! बहै क्रोध भरी है।
सेवा छाँड़ि दई आगे लठिया लै ठाढ़ी भई,
हरि पै चलाइबे की कथा कंठ करी है।
बैठत, उठत, न्हात, खात सोए आधी रात,
ऐसी सावधान ज्यौं घराबल की घरी है। ५।

छंद ३० के बाद—

मंगल संगीत धाम-धाम मैं पुनीत जहाँ,
नाचैं बारबधू देवनारि - अनुहारिका।
घंटन के नाद कहूँ बाजन के छाइ रहे,
कहूँ पिक केकी कहूँ पढ़ैं सुक सारिका।
रतन ठाट हाट बाटन मैं देखियते,
घूमैं अस्व गज रथ ही नर नरिका।
दसों दिसा भीर द्विज धरत न धीर मन,
उठति है पीर लखि बलबीर दारिका। ६।

छंद ४८ के बाद—

तंदुल माँगत मोहन बिप्र सँकोच ते देत नहीं अभिलाखे।
'हैं नहिं पास कछू' कहिके तेहि गोपि घनी विधि कांख में राखे।
सो लखि दीनदयाल उतै यह चोरी करी तुम यों हँसि भाखे।
खोलि कै पोट अछोट मुठी गिरधारन चाउर चाव सो चाखे।८।

छंद ५८ के बाद—

नित नित सब द्वारावती, दिखराई प्रभु आप।
भले बाग-अनुरागसह, जहां न व्यापै ताप। ८।

छंद ६२ के बाद—

हम सोंचत सोंचत चले हरि को अति दुख मानि।
घर की सुधि बम्हनै नहीं दीन्हीं सुख की खानि। ९।

छंद ६७ के बाद—

वेई सुरतरु प्रफुल्लित फुलवारिन में,
वेई सरवर हँस हँस बोलन-मिलन कों।
वेई हेम हिरन दिसान वहलीजन मैं,
वेई गजराज हय गरज - पिलन कों।
द्वार-द्वार छरी लिए द्वार पौरिया है खरे,
बोलत मरोर बरजोर त्यों मिलन कों।

द्वारिका तें चल्यौं भूलि द्वारिका ही आयो नाथ,
माँगियो न मोपे चारि चाउर गिलन कों। ११।
जित - जित बाँभन जात है तित - तित के नर नारि।
पायँ गहत हैं बिप्र के बहु पूछत सुभ कारि। १२।

ग्रामवासी—गए हुते द्वारावती, मिलिबे जदु-कुल-राय।
दीन्हों कह प्रभु ने तुम्हैं, हमको देहु दिखाय। १३।

नगरवासी—बिप्र सुदामा को नगर है यह चतुर सुजान।
करी कृपा यह कृष्न ने, दीन्हों द्विज को दान। १४।
कहा कहौं गोपाल की बिदित दसा द्विज दीन।
जौलौं परगट न भई, तौ लौं रह्यो मलीन।१५।

छंद ८२ के बाद—

चंपे को पिराका है कि सोने की सिराका है कि
संपा ही को भाग है कि कला कोऊ न्यारी है।
सुकवि नरोत्तम कै भूतल को भूषन है,
कै चकोर पूषन कि पुन्य की उजारी है।
मेरी अभिलाषा है कि कामतरु शाषा है कि,
गीरवान भाषा है कि सुधा कंद क्यारी है।
राग है कि रूप है कि रस है कि जस है कि,
तन है कि मन है कि प्रान है कि प्यारी है। १६।

छंद १२१ के बाद—

बिप्र सुदामा सहित तिय, उमगे परमानंद।
नित प्रति सुमिरन करत है हिय धरि करुनाकंद। १७।

पाठ-भेद के शब्दार्थ

१—चित—चित्त में। 'देहू' का अन्वय पहली पंक्ति से होगा।

२—भाइ (भाव) प्रकार, भाँति। लाइ—लगाकर।

३—बिरंचि—ब्रह्मा। द्योसपती (दिवस पति) सूर्य।

४—काढ़िबे को—घर से निकाल बाहर करने के लिए। कालिका···· भरी है—कालिका की तरह क्रोध में भरी है। पै—पास। चलाइबे की—भेजने की। कंठ करी है—रट ली है, बार बार वही कहा करती है। घड़ावल की घरी—समयसूचक जल से भरे पात्र में कटोरी छेदकर छोड़ दी जाती थी, जो ठीक एक घडी में भर कर डूब जाती थी। कटोरी के डूबने पर घंटा बजाया जाता था। घड़ावल—घंटा बजानेवाला। ऐसी·····घरी है। घड़ावल की घड़ी रह-रहकर अपने समय पर बजती है। उसी तरह यह रह-रहकर द्वारिका जाने को कहती है।

५—मंगल सँगीत—(मंगल संगीत) मंगल गान। धाम धाम में—घर घर में। बारबधू—वेश्या। देवनारि अनुहारिका—अप्सराओं-सी सुन्दरी। सारिका—मैना। नाद—शब्द, स्वर। नारिका—स्त्री।

६—गोपी—गोपन कर, छिपाकर। अछोट—छोटी नहीं, भरपूर। चाव—प्रसन्नतापूर्वक।

७—हरि····मानि—कृष्ण के व्यवहार को बुरा मानकर।

८—सुरतरु—कल्पवृक्ष। सरवर—सरोवर, तालाब। दहलीज—बैठक। गरज पिलन को—गर्ज कर घुसने के लिए। पौरिया—द्वार-पाल। मगेर—शान से। बरजोर—जबरदस्त। झिलन को—निकाल देने के लिए। गिलन को—निगलने के लिए, खाने के लिए।

९—शुभकारि—कुशल-प्रसंग ।

१०—विहित दसा—गुप्त दशा, अवस्था । मलीन—उदास, दुखी ।

११—पिराका—कली । सिराका (शलाका)—सलाई । संपा (शंपा) बिजली । कल-ज्योति—उजेरी । चकोर-पूषन—चकोर को पोषण देनेवाला, चंद्रमा, अग्नि । गीरवान (गीर्वाण)—देवता । कंद—मूल—जड़ । अलंकार—संदेह ।

१२—उमगे—प्रसन्न हुए । करुणानंद—दयावान ।

———

हमारे उपयोगी प्रकाशन

सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

(ले०—डा० प्रेम नारायण टंडन, पी-एच. डी.)

प्रस्तुत पुस्तक में सूरदास के समकालीन समाज की सांस्कृतिक विचार-धारा का परिचय देने के लिए उसके सामाजिक, पौराणिक, धार्मिक और सामान्य विश्वासों के साथ-साथ शकुन-अपशकुन और स्वप्न-संबंधी विश्वासों के अतिरिक्त भारतीय कवियों में प्रसिद्ध बातों और भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंगों—पर्वोत्सवों, संस्कारों और कला-कौशल—पर भी प्रकाश डाला गया है। सूर-साहित्य के ही नहीं, हिंदी के किसी भी एक कवि के काव्य के इतने विशद सांस्कृतिक अध्ययन का हिंदी में यह प्रथम प्रयास है। रायल अठपेजी। सजिल्द प्रति मूल्य ५)

हिंदी-साहित्य : कुछ विचार

(ले०—डा० प्रेमनारायण टंडन, पी-एच० डी०)

इसमें डा० टंडन के हिंदी-कविता-संबंधी नौ तथा हिंदी-गद्य-संबंधी पाँच उच्च कोटि के निबंध हैं। उनकी सूची इस प्रकार है—

१. ब्रजभाषा की विशेषताएँ २. पृथ्वीराज रासो ३. सूरसागर ४. साहित्य लहरी ५. सूर का वात्सल्य-वर्णन : कुछ प्रसंग ६. भ्रमर गीत प्रसंग ७. तुलसी का राम-रूप-वर्णन ८. तुलसी का काव्यादर्श ९. साकेत के कुछ पात्र १०. राजस्थानी गद्य ११. ब्रजभाषा गद्य-साहित्य १२. द्विवेदी जी का संपादन-कौशल १३. प्रेमचंद जी के उपन्यासों की मुख्य समस्याएँ १४. प्रसाद जी का 'चंद्रगुप्त' नाटक। डिमाई सजिल्द प्रति मूल्य ७॥)

अजातशत्रु और अन्य एकांकी

(ले० डा० प्रेमनारायण टंडन, पी-एच. डी.)

डा० टंडन का यह पाँचवाँ नवीनतम एकांकी संग्रह है। इसमें तपेदिक का रोगी, समानता संघ, शीलवती, अजातशत्रु, उपक्रम और वनवास के पूर्व की रात शीर्षक छह एकांकी संकलित हैं। सभी एकांकी कला की दृष्टि से सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं। मू० २)

पता—हिंदी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ